॥राधा॥ जानकीवल्लभ शास्त्री॥

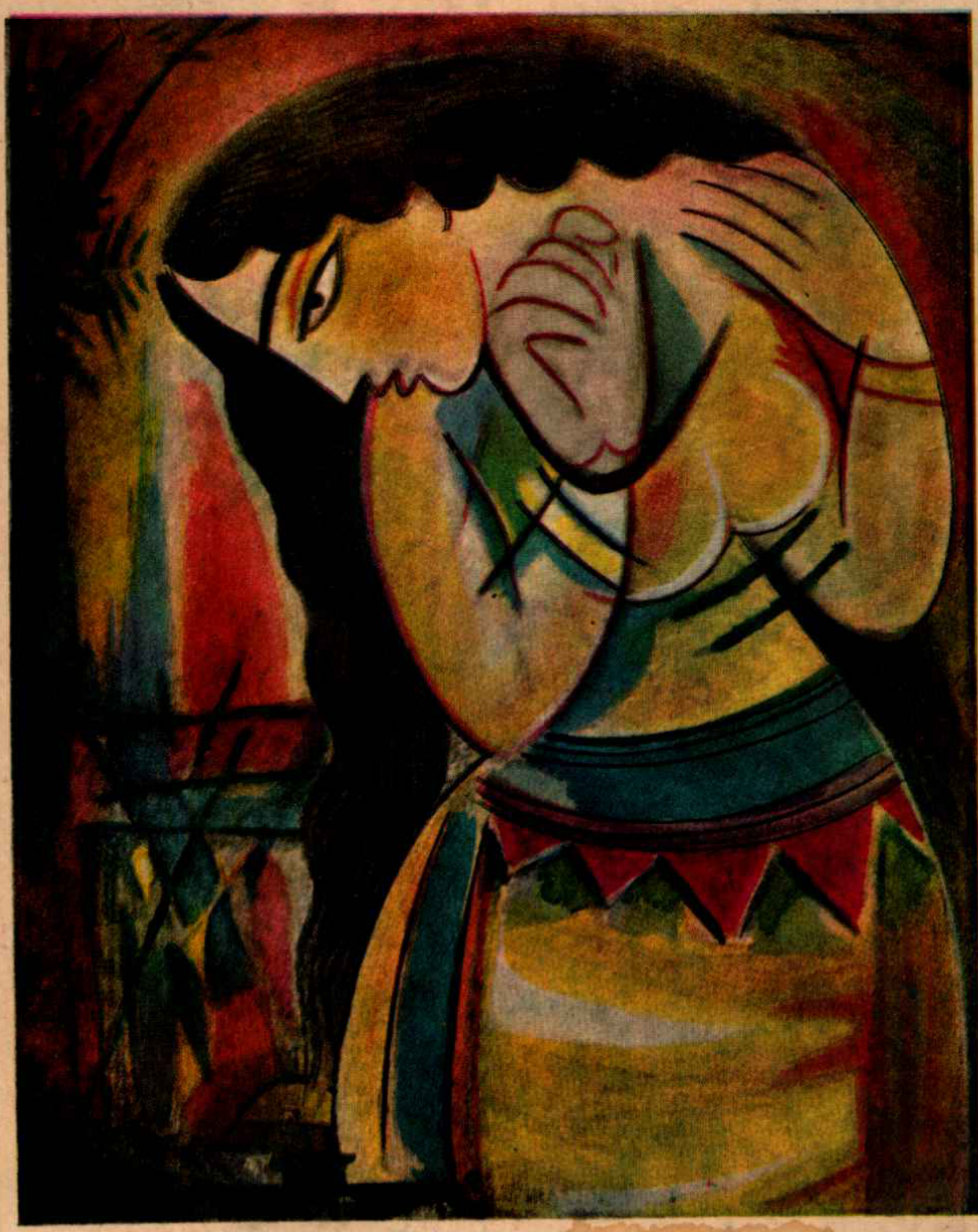

राधा
(३)

(६)

पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२

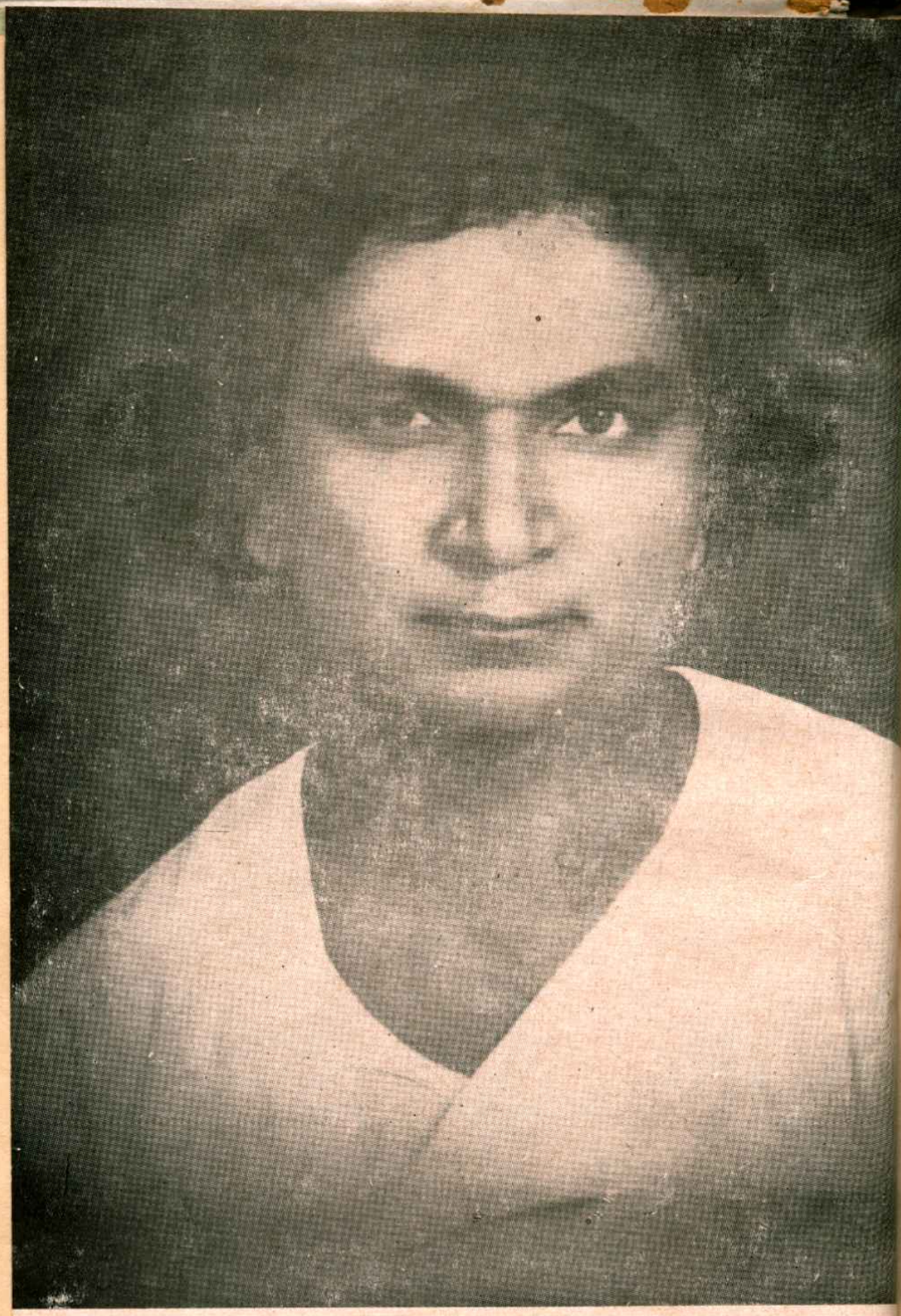

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

राधा

(३)

दर्शन-पर्व

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

© आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

मूल्य : चालीस रुपये / प्रथम संस्करण, १९८४ / आवरण : हरिपाल त्यागी/
प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा,
दिल्ली-११० ०३२/मुद्रक : भारती प्रिण्टर्स, दिल्ली-११० ०३२

RADHA-3 : Acharya Janaki Vallabh Shastri Rs. 40.00

सञ्जिनो छाया को

संरचना

काव्य-रचना इतिवृत्त का निर्वाह मात्र नहीं होती। यों भी राधा की कहानी जड़-चेतन की जानी-पहचानी है।

कल्पना की यथार्थता और अनुभूति की सघनता ने यह जो गढ़ा है, यह जो मेरे अनगढ़ शब्दों में व्याकृत हुआ है, यह किसी मान्यता पर निर्भर नहीं है। यह यदि निर्माण है तो आत्मानुसन्धान के कारण, प्रयोग है तो अक्लिष्ट मनोयोग के कारण।

मनोमय भूमिका आनन्द और सन्ताप के द्वन्द्व की तीक्ष्णता से मुक्त नहीं है; विरह और मिलन के तिमिर-वरण किरण-बाण तीव्रतर घात-प्रतिघात का एक भी अवसर नहीं चूकते।

शब्द मात्र जिसकी पहचान है, वह आकाश इन्द्रियों द्वारा पकड़ में आने वाली समस्त वस्तुओं का अभाव मात्र नहीं है। तत्त्व सदा सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय होता है। इन्द्रियग्राह्य जो है, तत्त्व नहीं है। पञ्च तत्त्वों की स्थूल वस्तु रूप में प्रस्तुति स्तुति के योग्य नहीं है।

राधा की सामर्थ्य जीवन की अभिज्ञता को कुछ आवेग और मार्मिक सन्दर्भ देकर ही नहीं समाप्त हो जाती। उसके अन्तस्तल को व्यक्तिविशेष की तरल अनुभूति और सरल अभिव्यक्ति का सदानीर स्रोत मात्र मानना उपयुक्त न होगा। शिलीभूत मौन चपल भाव-प्रवाह का प्रतिलोम ही नहीं है। कोई कुण्ठित या चुप्पा मुनि नहीं होता।

दर्शन जीवन के बाहर भी अपना अस्तित्व बचाकर रखता है। मेरा मन न मान सका। जो कुछ शब्दों के अभ्यन्तर का प्रकाश और विरल की उत्क्षिप्त अनुभूति का उच्छ्वास हो, वह कविता के विश्वास में नहीं भी आ सकता है। दर्शन-पर्व जीवन-दर्शन की सीमाओं में ही अपनी सार्थकता का आयासी है। भौतिक कर्म आध्यात्मिकता को फलांग कर तीव्र गति से जहां पहुंचता है वह विनाश का अत्यन्त अशान्त समतल है। विकास, अन्ततः विनाश का कारण न बने इसे हम सतत-सजग शुद्ध प्रेम से ही संयत कर सकते हैं।

प्रेम आध्यात्मिक ही होता है, जो चंचल, उत्तेजित और उद्‌भ्रान्त करता है

उसका नाम प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी हो सकता है। राधा-कृष्ण की अनन्यता आत्मा और परमात्मा की ही एकता है। आत्मनिर्भरता का आधार अहंकार नहीं, आत्मा है। जिसे साधा जाता है, वह मन है, साधने से जिसकी उपलब्धि होती है वह आत्मा है। कबीर, सूर, तुलसी आत्मा के ही अनुभवी थे, उनके श्वास-श्वास में संयत-स्वतन्त्र मानव-जीवन की धड़कन है। प्रकाश देखने के बाद अन्धकार का साक्षात्कार दुर्वह-दुर्भर नहीं होता; सूर्योदयदर्शी नयन घन-घटाओं में नहीं भटकते।

जो भाव में अधिगत हुआ, रस में मिला, उसे शब्दों के सघन वन में पुकारना पड़ा। मरु रेत-रेत है, रेत का समुद्र है; जल की उच्छल तरंगें यहां नहीं, बगूले रेत के कम उछाल तो नहीं लेते। पनडुब्बे पानी में पानी के अतिरिक्त भी बहुत कुछ देखते हैं; रेत-भरी आंखें भी रेत ही नहीं देखतीं।

राधा ने अपने हाथों रात भर नाव खेई कि अब उस पार पहुंची, कि तब उस पार पहुंची। सकारे पारे की तरह किरणें पिघलीं तो परखा, नाव खुली ही न थी; किनारे से कसकर बंधी हुई थी। बांहें पिराने लगीं संकल्पों के बिखराव पर। तब भी बिना हाथ-पांव के तीव्र-गति आत्मा ठीक-ठिकाने पहुंच कर स्थिर थी।

प्रणय की निष्क्रिय-सी दिखने वाली सक्रियता लोकसंग्रही न होने पर भी लोक में ही चरितार्थ होती है। नकारने के क्रम में भी लोक अतुल अलौकिकता को कभी भूलता-बिसरता नहीं है।

प्रकृति से शीतल जल भी आग के सम्पर्क में आने पर शरीर को जला देता है। मोतियों का हार पिरोने पर धागा नहीं दिखता, देखना हो तो दो पोए मोतियों के बीच में दिख जाएगा। संकल्प-विकल्पों के बीच में ही चेतना की परख होती है। आत्यन्तिक अनन्यता अविच्छिन्न अभ्यास साध्य है। आत्मा की स्वतन्त्रता उच्छृङ्खल मन के टूटे-फूटे दायरों में से नहीं आती। ज्ञान अनुभव से उपलब्ध होता है, अनुभव चेतना के स्तर पर ही संभव है।

कालिदास विश्व के सबसे बड़े कवि हैं क्योंकि पंखिल रूप-सौन्दर्य का उन-सा अलक्ष्य चितेरा कोई दूसरा नहीं, उस पंखिल रूप-सौन्दर्य्य का जिसकी ऊंची-से-ऊंची उड़ान का एक मात्र विश्राम-धाम अरूप आनन्द या अनन्त आत्मा है।

काव्य में उस पार से इस पार आने का विधान है। उस पार से आए हुए की एक अलग पहचान होनी चाहिए; उस पार का पूरा-पूरा आभास इस पार को मिलना चाहिए।

राधामाराधयाम्यहम्

श्रीराधा, सच्चिदाकाशः
स्वेच्छयाऽ वातरद् भुवि—
यामाह्वयन् निरानन्दा—
नन्दयेत्सा सदन्तरम् ॥१॥
प्रसादिताऽऽ सादित - हृत्सपर्य्या
कर्मापदेशादनपेक्षिता वा
याऽतुल्यशीलाऽच्युतधीरधीस्तां
राधामसाधारणशक्तिमीडे ॥२॥
तप्तहेमप्रभां राधां
प्रेमाधारवसुन्धराम्
वन्दे वन्दारुकारुण्य—
कल्पवल्लरिमूर्ध्वगाम् ॥३॥

निर्विकल्पांनिरातङ्कां
जगदानन्दकन्दलीम्
सखीभिः सम्भृताकारां
ताराभिरिव रोहिणीम् ॥
आयोधने प्रवृत्तस्य
द्वन्द्वान्दोलितचेतसः
कृष्णस्योज्ज्वलपक्षाक्षि-
लक्षितां पर्वचन्द्रिकाम्

मरन्दसरसीं पद्मे
विद्युतं सुरवर्त्मनि
मनीषां मनसि स्फीतां
राधामाराधयाम्यहम् ।

लोकसंग्रहिणं कृष्णं
सर्वभूतहिते रतम्
प्राप्तानन्दा प्रशंसन्ती
ललिते वलितेक्षणे
किं कोपयसि गोपीनां
न्यस्तैश्वर्य्यामधीश्वरीम्
'अन्यच्छ्रेयो'ऽनुमन्वानो
राधामाराधयाम्यहम् ।

श्रीखण्डं चन्द्रशकलं
स्मारं स्मारं ज्वलद्भुवि
किं सीदसि, न लभसे
राधाधारां तुषारताम् ?
ज्ञान - कानन - धूम्राग्नि-
स्फुलिङ्गैः कालचालितैः
दग्धस्वरा च मुरली
विदग्धा राधिका तथा ।

ज्योतिःप्ररोहैर्नेत्रोत्थै-
र्मनोवाक्कर्मसन्ततम्
दूरीकरोति दुरितं
दयार्द्रहृदया द्रुतम् ।

राधिकाऽऽ राधिका नित्यमन्तर्दृशो
विस्मृता विस्मिताऽऽयुर्व्यतीयाय चेत्
त्वद्व्रजे गोभिरुच्छृङ्खलँ किं चरन्
जानकीवल्लभोवल्लवत्वं व्रजेत् ?
अवज्ञातेन ते ज्ञातॅ
परार्द्धादधिका गुणाः।
त्वामृते व्याकृतौ तेषां
को मामधिकरिष्यति ?

उत्फुल्लमल्लिका राका
शारदी रासवासिता
काले गते बहुतिथे
सञ्जाताऽद्य पुनर्नवा
तीक्ष्णतृष्णाविशीर्णान्तःकरणा
मरणाधिकाम्
केनोपायेन गोपायेद्
गोपी गोविन्दवेदनाम् ?

त्रियामायामस्यां सकृदपि नमस्याङ्घ्रि-नमिता
न कामापश्यामाऽमरपुर पुरन्ध्रीष्टपदवीम् ?
स दुष्प्रापे स्वापे कथमिह भवेत्स्वप्नसुलभो
न कार्य्यं किं कार्य्यं न कथमवधार्य्यं प्रियवचः ?

उदित प्रमुदित इन्दु,
सुन्दर शरद राका आज;
त्याग जग के काज
कर कोई - न - कोई व्याज !
धीर - धीर - समीर - कम्पित-
नीर यमुना - तीर
चपल चल कर बैठने को
हृदय अधिक अधीर !

नित्य झर-झर नयन झरते,
नित्य थर - थर गात,
शुष्क जीवन में हमारे
नित्य ही बरसात !
लग रही कैसी अलोनी,
अनमनी अज्ञात;
चिर - अमा में आज की यह
चांदनी की रात !

वचन से बचना कठिन था,
टूट - जुड़ निर्वाक्,
चरण - चरण चले जिधर
चलती रही तृण ताक !
कौन - सी प्रतिपत्ति,
करती व्यर्थ शब्द - प्रयोग
राधिका आराधिका थी;
मौन मन का योग !

शब्द का पीयूष चन्द्रा—
झर रही विष डाल,
झीमते पथ पर खड़े
मुरझे रसाल तमाल !
राधिका मितभाषिणी
पञ्चाग्नि - शोधित स्वर्ण
प्रणय - प्रणव उचारती
श्रुति का प्रथम रच वर्ण ?

दुर्विपाक तुहिन नियति का,
पाक - पाण्डुर सस्य,
चांदनी में हो रहा
छाया - शरीर, रहस्य !
खेत रेत-भरे, मरे - से,
हहर हर - हर वायु—
बह रही जड़ को हिला;
चुगती फुनगियां आयु !

सांस साधे-सी सरसियां
कुमुद - नयन सहस्र—
फाड़ ज्योत्स्ना - जाल लखतीं
श्याम गगन अजस्र !
फुदकतीं फर-फर शफरियाँ
बीचियों के बीच;
हम सहम खिच चिहुंक
लेते जल - भरे दृग मीच !

कांस - चामर - पुच्छ का
यह गुच्छ-गुच्छ विकास
विगत वर्षों का हमारा
हो जमा ज्यों हास !
इस बरस तो तरसता ही
है हंसी को हार
मरु - हृदय में सूखती
जाती नयन - जलधार !

गया काजल फैल ?
भाल-तमाल-दल या म्लान ?
बांह संवलाई, झुकी ?
श्यामा लता या श्यान ?
निस्तरङ्ग अपाङ्ग,
अधर बिरक्त, आनन क्षाम,
छीजती-सी यह शरद की—
यामिनी प्रतियाम !

घूमता है चक्र जग का,
कुछ कि चिर - अभिराम
चांद था पहले चमकता,
अब कलङ्क अनाम !
चांदनी थी चार दिन की
कलित ललित ललाम
दृष्टि-दोष न हो, तिमिर—
विभ्रम, रही लग श्याम !

गान यह जीवन नहीं,
इस मरण में क्या प्राण ?
स्वाद सुख का अनचखा,
दुख अनलखा प्रतिदान !
स्मृतिमुखर छाई हुई
धौली घटा चहुं ओर
तार चांदी के बरसते
लौह - शृङ्खल - रोर !

बह गया जीवन मलिन कर
प्रखर पावस स्रोत
शरद दूरारूढ़ कोई
कल्पना की जोत !
लट उलट कर देखने पर
तम - चढ़ा उद्योत,
यह नहीं है चांदनी,
अनुभूति ओत - प्रोत !

धूल-उल्का खर - बवंडर
का न हो टकराव
फूल कर सूखा हुआ
बिरवा दिखाए चाव !
समय का न बहाव यह,
जमता हुआ - सा काल—
हों लकीरों पर फुहारें,
चित्र का क्या हाल !

सब कहीं तो द्वन्द्व,
मन निर्द्वन्द्व हो किस भांति
तना कण्ठ, उतान शीश
कि कौन मित्र, अराति !
कौन जाता नीलमणि-तृण
मोतियों से सींच
नखत - खचित गगन
भले ले ज्योति-पलकें मींच !

तान नवल वितान
ज्योत्स्ना का चपल जल-वीच
नृत्य - रत - सी लहर - परियां
सलज जलज उलीच !
समुद कुमुद किलोलते
इस ओर चन्द्र-चकोर,
नील लोहित दृग हमारे,
दीन मीन विभोर !

कामनाएं निष्प्रमाण
नपी - तुली - सी आयु
कौन बांधे मुट्ठियों में,
मुक्त वहती वायु !
अब अतीत अलङ्घ्य अर्णव
गीत - तरणी मन्द
बन्द जीवन - पथ निरख
निश्वास भी निस्स्पन्द !

अर्थसिद्धि हुई हमारी
साधना कर व्यर्थ,
सर्वथा कृतकार्य हों—
अनिवार्य प्रणय अनर्थ !
स्वच्छ छायावृक्ष, आते
पथिक प्रथम अथोर,
टेक टिकने की कुमति,
निशि का न होगा भोर ?

वाम विधु के मधु,
अरी दक्षिण पवन की सांस
अधजले स्वन वेणु-वन के,
ओ नदी की प्यास !
घोलती हो क्यों गरल ?
मधुमय विजन का मौन
भर रही स्वर में उदासी
पूर्णिमा - सी कौन ?

देह-यष्टि प्रकृति पुरातन,
किन्तु आत्मा ईश;
हृदय धड़के, नयन फड़के,
पर झुके मत शीश !
ईश के ऐश्वर्य्य की
झांकी दिखा आकाश
क्षुब्ध सिन्धु तरङ्ग से,
हो थिर धरा की आस !

दे रहा सन्तोष, साहस,
क्लिष्ट सुख में बोर
डूबता है चांद
देने को सुनहला भोर !
तरल भाषा शान्त हो,
दुर्ललित भाव गभीर,
निष्कलुष मन,
निर्विकार, विचार, निस्तल नीर !

अर्चना के फूल धोना
आंसुओं का धर्म
ओप रंगों पर चढ़ाता
स्वच्छ अर्पित मर्म !
चांदनी अन्तर्गगन की
अधमुंदों को खोल
पार से नीहार के
देती किरण-मधु घोल !

कौन हो निर्द्वन्द्व,
द्वन्द्वों का रचा संसार,
रक्तधार कहीं; कहीं—
वहती नयन - जल - धार !
अमृत में है मृत्यु,
सिमटा प्रणय में है पाप,
दीप सेता है अंधेरा,
चांदनी भी ताप !

मलय के झोंके मरें,
शैवाल - जाल सुगन्ध—
हो सकेगा ? या कि तीक्ष्ण—
मृणाल होंगे मन्द ?
शक्ति परिसीमित,
न तारे रवि-करों के दीप,
सिरजती मोती नहीं
सरि के पुलिन की सीप !

भरे तूर्य्य - निनाद से
स्वन-वेणु से कि दिगन्त,
भ्रमण कर देखें सकल ग्रह,
गगन का क्या अन्त ?
तर्क जलता, बुद्धि ठंडी—
हो रही दिन रात,
सरल पीते गरल,
कुटिलों में सुधा की बात !

झुके क्रीड़ाकूट,
पर्वत हैं खड़े सिर तान;
स्तब्ध तट सुन कर
तरङ्गों का अखण्डित गान !
बादलों से खेलता,
संघर्ष करता इन्दु,
छिटक कर तट से कभी
है सिन्धु बनता बिन्दु !

धूप में छाया न हो,
है धूप भी तो छांह,
दुख सृजन-क्षण हो न सुख का,
दुःख सुख की बांह !
प्रकृति की प्रिय किरण-तम-
गुम्फन - कला सहजात,
कीर्त्तिमान पुरुष करे स्थापित,
करे आघात !

बात हो तब एक;
रूढ़ि झिझोड़ते ज्यों श्याम
हो नहीं सकते अकारण
वह कि दक्षिण वाम !
कांस-वन हंसता, लिया—
जलवायु को है फांस
'हम न मिट्टी से उठेंगे ?'—
पूछता आकाश !

चक्रवाक पुकार लेते
दुख परस्पर बाँट
रात हो जितनी बड़ी
वह जोहते हैं बाट !
रास की यह रात प्रिय
विश्वास की यह रात
हम रहें पीछे न,
आगे हो समय की बात !

रेत भर चञ्चल दृगों में,
अनिल, बह स्वच्छन्द
एक अञ्जलि जल तुझे दूं
डूबना मत मन्द !
एक पल क्यों दूसरे पल से—
न हो अभिराम
समय यदि वरदान-सा हो
साथ साक्षी श्याम !

ठूंठ पेड़ लगें लदे-से
पल्लवों से नव्य
पुलिन यह द्युतिमान
श्यामल दूब से हो भव्य !
चांदनी पीते विसुध हम
अलस उन्मद गात
एक रात यहीं बिताते
कर अनर्गल बात !

कभी घर के काज,
जब-तब गुरुजनों की लाज
यन्त्रवत् जीवन बंधे न,
कभी दुराज-सुराज !
निरानन्द परम्परा-शासित
हमारे दैव
विरस और विशुद्ध हों भी,
नहीं वैष्णव, शैव !

चांदनी दायित्व हरती,
पवन देती पंख,
मन सुनेगा ? फूंकता
कोई भले हो शङ्ख !
सांस लेते हम,
सुवास समीर पीता मुग्ध,
आंसुओं से हास झरता,
हास फेनिल दुग्ध !

एक क्षण देता हमें
बीते युगों का स्वाद
जब न थे हम, और
जब होंगे न हर्ष-विषाद !
हम पपीहों के व्यथा-डूबे
कथा - आख्यान—
थे सुना करते, पिएँ अब—
अश्रु प्यासे प्राण !

अब बहुरने की नहीं
वह ऋतु विनय-उन्मत्त
भाव शून्य-प्रभाव सब,
कोई निकाले सत्त !
वह असह आनन्द था,
यह सर्व सह सन्ताप,
बांट जो न सके कि भोगें
शेष अपने आप !

स्वप्न देखें मूल्य का,
स्वागत कठोर यथार्थ
कल्पना सुकुमार होती
प्यार-सी निःस्वार्थ !
मानता है मन नहीं
जल-बल गया सच स्वर्ण
चांदनी यह राख का—
है ढेर स्वप्न-विवर्ण !

राख सोने की न जग का—
प्रथम घटना - चक्र
सामना हमने किया था—
जानता है शक्र !
झेल लेंगे चांदनी का
यह विषम आसार
तान गत का गान,
उर पर सुर कि छत्राकार !

था सहा न शकुन्तला ने,
हम विपन्न नवीन
थी न दमयन्ती हुई
निर्जल नदी की मीन ?
देख सकते थे नयन
देखा अदेखा काम;
श्रवण सुन सकते, सुना
स्वन वेणु का उद्दाम !

देहवल्ली मल्लिका-सी,
फुल्ल परस वसन्त;
गहन मन की कामनाओं का
कहां है अन्त ?
कामना करता प्रतीक्षा की
न कोई एक
बस इसी से स्वरित—
जीवन की प्रतीक्षा टेक !

चिरमिलन की कामना का
असह विरह प्रमाण,
मौन मरण-तरण,
निनादित सिन्धु जीवन-गान !
पलटतीं ऋतुएं न पहली,
लौटतीं भर नेत्र,
फूलते-फलते बहुत हैं,
बदल जाते क्षेत्र !

पीत अम्बर से उतार
विषाद के पट श्याम
क्यों न रो शिशु-सदृश हंस दें
हो कि वर्षा-घाम !
गान एक उड़ा दिया,
जाने पवन गतिमान,
गगन-गगन उड़ा किया
पाया कि उर में स्थान !

एक तारा टूटता,
होती धरा यह धाम,
नयनतारा एक करता
नयन को निष्काम !
कुछ नहीं खोता,
समोता समय सब निःशेष,
काल लेता है संभाल
जिसे जुगोता देश !

हम किसे कहते सुगम-दुर्गम
सभी हैं पन्थ,
तर्क्य, तर्कातीत बतलाते—
सभी सद्ग्रन्थ !
दृश्य जो होगा, दिखेगा,
हो प्रखर आलोक
चांदनी में भी न दिखते
पास कोकी - कोक !

अन्धकार कहां करेगा
तरु - लता को दूर
गरजते बादल कि रह जातीं
बिजलियां घूर !
मैं अकेली बड़बड़ाती
और जाती हार,
रासमणि को क्या हुआ;
मैं लग रही हूं भार ?

मलिन छितवन, अधखिली
शेफालिका उर थाम,
दिख रहा है भित्तिचित्र—
समान वृन्दाधाम !
मार मन करना सभी दिन
एकरस गृह - काज,
बैठ लें कुछ देर तो
यमुना - किनारे आज !

बैठते ही ऐंठ कर प्रत्यङ्ग,
तज निश्वास
कुछ लगी कहने सखी विरजा
जमा विश्वास !
हो अधृष्य अगम्य सागर
किन्तु तुङ्ग तरङ्ग—
शान्ति से रहने कहां देती
चढ़ाती रंग !

था सुना पहले किसी ने
नाम ऐसा क्रूर
फट पड़ा औचक कहां से
कौन - सा अक्रूर ?
नयन खोखल में धंसे,
पिचके पके - से गाल
गिलहरी की पूंछ - सी
मूंछें, दशन विकराल !

ताकते ही रह गए हम
दृग भरे निरुपाय :
एक कण करुणा कढ़े
पाषाण - मन से हाय !
याद है, रथ से स - सम्भ्रम
उतर कर, झुक झूम,
हंस रहा था नन्द - नन्दन—
चरण - रजकण चूम !

कंस राजा की सभा का
रतन - धन अनमोल—
ले गया गोपाल को ठग,
झूठ - सच कुछ बोल !
आंख मटका, सिर झटक,
था बोलता किस भांति
औ' हंसी उसकी कि जैसे
उड़ चली वक - पांति !

बोल अविरल सबल : चल, चल,
दृग कि छल - छल लोर
सर - सरित - सागर - लहर लें
करे कलरव, रोर !
रंग बांध मृदङ्ग - संग
अभङ्ग नाचे मोर
क्रूर - जैसा क्रूर ढंग
कि हो न सांझ, न भोर !

देव - दुर्लभ व्रज - रतन - धन
था चुराना काम
समझ पाए मुग्ध मुख
अपने न सुन्दर श्याम !
भर गईं आंखें धुएं से,
आग थे मन - प्राण,
कुछ न कर हमने मरण को
दिया जीवन - दान !

विष विषय क्या विस्मरण का
लौह - अन्तर - गात
बेच दी अपनी परसमणि,
था लगाए घात !
अधम धन पर प्राण देता,
श्रेष्ठ को प्रिय मान;
क्या मिला हमको गंवाकर
भर नयन धन - मान !

था न पन्ने का पहाड़
हमें मिला साकार
हम उसे पत्थर बना बैठे,
किया क्या प्यार ?
हरित तन पर पीत पट की
थे छटा में लीन
रथ उड़ाए जा रहा था
मन हमारा छीन !

बालपन का बिछड़ साथी
जब गया मुंह मोड़,
कौन - सा सुख भोगने
हमको गया है छोड़ ?
काटने पल - छिन जहां हों
नित बिसूर - बिसूर
मिलन की क्या आस
जब हो पास इतनी दूर ?

हम धुआं हैं, आग दे
हमको हवा में फेंक ;
अश्रु हैं, ज्वालामुखी को
चाहिए अभिषेक ?
दग्ध मन की घन तृषा हैं,
चांदनी - परिताप,
निष्पलक कि निशीथिनी हैं,
दिवस - वर - अभिशाप !

शीत चन्दन - बन्द ज्वाला की
धधक दुर्वार
आंख से होते न ओझल
केलि - कुञ्ज - कछार !
डंस विसुध सुधि ने सुधा को
किया गरल - विकार
क्या विनाश - सृजन, नहीं
जीवन मरण का ज्वार !

अडिग निश्चय, अमिट है
कोरे हृदय पर छाप,
रिक्त हम होंगे न,
है अभिषिक्त अन्तस्ताप !
नयन अपने साक्ष्य देते,
है उजागर रूप,
हृदय कहता, निठुर - उर
होंगे न केवल भूप !

वर्तिका हम हैं, तुम्हारा
स्निग्ध दीपक - रूप
हम जलें अविकल्प, तुम
आलोक दो अपरूप !
क्या शिशिर - मधुमास,
क्या उच्छ्वास या निश्वास
हम अलोनी मृत्तिका,
तुम विरज मधु आकाश !

तरण - तारण चरण के
चारण नहीं वाचाल
भूलकर परलोक - लोक
निकाल भाल विशाल !
हम हुए बलिहार थे
तन - मन गए थे हार
था कृपण सम्पूर्ण अर्पण ?
ओ विवेक उदार !

काल दुहराता स्वयं को,—
क्या नया, प्राचीन
प्रति प्रवर्तन चक्र - परिवर्तन,
सुरथ गति लीन !
कर न पाया कौन भूत
भविष्य का निर्माण,
गत-अनागत - सेतु शाश्वत
वर्तमान महान !

वासु - देव न विस्मरण
होता स्मरण का मूर्त
भ्रष्ट होते यजन-भजन,
अनिष्ट इष्टापूर्त्त !
शक्ति विस्मृति यातना की
मेटती कटु क्लेश,
दुख प्रखर करती रहे स्मृति,
सुख - कथा हो शेष !

कब कहां नीचा दिखाया ?
मन बनाया क्रूर
क्यों किया अपमान ?
लें बदला न हम कम शूर ?
सोचते जो वह नहीं
पाते कहीं भी शान्ति,
जय-पराजय भूलने पर
प्राण पाते शान्ति !

विस्मरण से विगत के
आगत अनागत भव्य
प्रज्वलित कालाग्नि में
प्रतिनिमिष—पल हैं हव्य !
त्रात त्रेता की हुई फिर
नए युग में नव्य,
कृत्य दशरथ का, हुआ, लो—
नन्द का कर्तव्य !

थे पधारे यज्ञ का
ले नाम विश्वामित्र
यज्ञ की देता दुहाई
क्रूर और विचित्र !
यज्ञ ऋषि का सर्वहित,
उपकृत हुआ यों अंश,
लट दबा ली यज्ञ की ?
कब लड़ मिलाता कंस !

धूल-उल्का खर - बवंडर
का न हो टकराव
फूल कर सूखा हुआ
बिरवा छिपा ले चाव !
समय का न बहाव यह,
जबदा हुआ-सा काल
हों लकीरों पर फुहारें,
चित्र का क्या हाल ?

राम - लक्ष्मण को लिवा ले
ऋषि गए; भूपाल—
हाथ मलते रह गए,
सूझा न कुछ तत्काल !
पहन वासन्ती वसन
माध्वी अयोध्या झूम—
सिन्धु को बोली :
लहर कर इन्दु को लो चूम !

कृष्ण औ' बल को लिवा
जब ले गया अक्रूर
नन्द से न रहा गया,
पीछे पड़े कुछ दूर !
आ गया पतझर कि
वृन्दा-विपिन में उड़ धूल
भर प्रखर मर्मर रही :
'अब बहुत फूले फूल !'

चरम परम न कृत्य होता
भूत काल कराल
पलट आता, किरण प्रत्न
सयत्न भर नभ - भाल !
आद्य विद्या का प्रभाव
पसारती रुचि भेद
सो बहाया अश्रु, क्यों
है जग बहाता स्वेद ?

दो युगों की एक-सी घटना,
विषम परिणाम
नियति यदि मिथ्या,
समुज्ज्वल सत्य किसका नाम ?
अमृत विस्मृति, क्यों हलाहल
आह, आता याद
रुधिर जमता, सांस थमती,
विकृत होता स्वाद !

शान्त हो आतङ्क का दिन,
शान्त विषम वियोग,
शान्त जीवन मरण वरण करे
कि भोगे भोग !
शान्त मन अक्रूर क्षण में
रवि हुआ गतिहीन,
शान्त निर्जन में करे क्रीड़ा
तिमिर में लीन !

चूर्ण कुन्तल-मेघ निर्मल
है तरुण ही चन्द्र,
है नहीं ज्योत्स्ना जरा की
धवलिमा स्वर-मन्द्र !
यह हुआ भय से न उजला,
उर उदार अशङ्क
पालता चिर काल से है
अतुल अमिट कलङ्क !

कौन - सा सुख सत्य
पाकर हो जिसे मन मत्त
पेरता सिकता कि निकलेगा
कभी तो सत्त !
है घड़ा कच्चा चला
भरने कि औघट घाट
औथरा जल कर रहा
ठट्ठा कि ठस है ठाट !

प्रेम की ऋतु बगुर वर्षा
फांस सांस अबोध
है बहा देती गहा तृण,
होड़ लें अवरोध !
शरद सैकत है दिखाती,
कांसवन की आस,
अव उड़ें खंजन - नयन,
मानस कि हंसावास !

ह्रास हो कि विकास, अब क्या,
कर्म - फल - नत - शाख
है खड़ा जीवन - महीरुह
लगी सबकी आंख !
व्यङ्ग करती - सी तरङ्गें
है उठाती वायु,
छोर तक झकझोर कर
है मापती परमायु !

मेघ के सोपान, हम
चढ़ते रहे आकाश,
डाल विद्युन्माल झरता
सप्तवर्ण प्रकाश !
तोड़ तारे था लुटाता
ज्यों सुमन मन्दार
चांदनी यह है बरसती
आंसुओं की धार !

उमड़ विस्मय - वारिनिधि,
व्रज है तुझी में मग्न
कौन अनहोनी हुई
इतिवृत्त होता नग्न !
प्रणय नय का ही प्रकर्ष
अनय किसे है मिष्ट
झांक अन्तर्मुकुर में—
कोई कहे क्या इष्ट ?

वर्तिका कितनी तुनुक
जाने न नीलम - दीप
सजल ढलढल मुक्त मुक्ताहल—
बंधी रे सीप !
शून्य जीवन - सिन्धु के
हे नीलकमल सुवास,
तुम भरो स्पन्दन, लहर ले,
घुट रही - सी सांस !

अधर झरता हास था,
ये नयन भरते लोर
सांझ कब झुकती निशा चुकती
कि होता भोर !
ज्वार जीवन-सिन्धु का था
स्फार होता बिन्दु
जम गया जल,
पूर्णिमा का यों उगा है इन्दु !

सिन्धु - जल - सी है हरी
फैली हुई यह घास
नील लोहित झांइयों - सी
लहरियों का लास !
हम कहीं दिखते नहीं
उज्ज्वल - तिमिर की बाड़
नारिकेल न एक,
खड़ - खड़ कर रहे हैं ताड़ !

डोलते हैं चर - अचर पर
अब लगा हिंडोल
चल मतङ्गज - चाल कौन कहे
करें कल्लोल ?
अंग गोखुर - रेणु - रंजित
नयन - व्यञ्जित - भाव
श्लथ हुए हैं प्राण लख
तन का करीर - कसाव !

भूल भी पाई कहां थीं
हम अभी वह मूर्ति
दूसरे आए बड़े, करने
उसी की पूर्ति !
दग्ध बुद्धि विदग्ध उद्धव
वृद्ध गृध्र-स्वरूप
बोलते मण्डूक जैसा,
मुंह कहां ? था कूप !

बस कि अपनी ही बके जाते,
न सुनते एक
अन्ध सावन के गगन तक
हरितिमा की टेक !
नाम लेकर श्याम का
आते न गोकुल-गांव
पलटना पड़ता उन्हें
उच्छन्न उलटे पांव !

कामना के कल्पतरु के
कुसुम-वृन्त कठोर
चिनगियां चुगते रहे सुनते,
अचन्द्र चकोर !
मोह मोहन का, न हो पाया
बहुत सम्मान
नाम ललिता का नहीं तो
भूलते न सुजान !

आग मन की, तन हमारे
जल हुए हैं क्षार
गरल-फल निकला, हुआ भ्रम;
यह सुधा का सार!
नयन-जल, उच्छ्वास अनिल
असत अचित आकाश
बच रहे हैं प्राण, कैसी
प्रिय मिलन की आस?

एक बार निहार लेते और
वह मुखचन्द्र,
एक बार पुकारती मुरली
मधुर-सुर मन्द्र!
संग शैशव का सहज,
कौमार्य्य का शृङ्गार
एक बार उदार उर का
और पाते प्यार!

तड़फड़ाते प्राण पञ्जर-बद्ध
हों ज्यों कीर
एक दर्शन मेट देता
जन्म भर की पीर!
एक दर्शन मलिन पुलिन
बिसार बहता नीर,
शुष्क कण्ठ तुषार होता,
तप्त श्वास-समीर!

सोच-मोचन वे विलोचन
चपल और विशाल
दीन मीन बिसूरते !
क्यों गए तट पर डाल ?
कुञ्जवन की सघन छाया
चीर फैली धूप,
चिर-तिमिर-निशि ग्रस
रही-सी चांदनी का रूप !

मोर - पंख उड़े पड़े हैं,
भोंर भाव-विभोर,
मुंह घुमा चिर-सहचरी से,
ताकते नभ-ओर !
कौन गाए गान
छेड़े कुहू-केका कौन
दग्ध तन में मन निपट
निस्तब्ध साधे मौन !

सौंह मुरली की, कहा था—
परस उर वनमाल
मैं नियार न रंच हूंगा,
प्यार पाल रसाल !
विभव मथुरा का अपरिमित—
राज-काज अपार,
वचन पिछला बोझ,
रखता कौन भार-सँभार ?

झलक मिलते फूलते
केसर - कदम्ब - उशीर
निमिष जो ओझल हुए
दहता सनीर समीर !
एक पल चेतन, अचेतन
एक पल मन-प्राण,
स्वर अधर - उलझे
विषम सम, तैरती है तान !

धाम परमानन्द का,
पाते जहां हम ठौर
कुलिशचेता मन्त्रि-नेता
वहां कोई और !
लें बलैयां राहु-केतु-निकट
उगे रवि - चन्द्र
गगनवीणा में विलम्बित
लय, स्वरित निस्तन्द्र !

पथ अनन्त मिला
कि जब थे चाहते विश्राम
अब कहां जाएं ? बना जब—
प्रश्न - चिह्न विराम ?
हम नहीं अब हैं कही के—
मोल - तोल - विदग्ध
गए उद्धव नवल-पल्लव—
कुञ्ज-वन कर दग्ध !

लक्ष्य-पथ का अन्त रे!
धूल-धूल धुआँ-धुआँ-सा
शेष शून्य दिगन्त रे!

पलक-पंख सशङ्क फड़का
उड़ गए सुख-स्वप्न सारे
वेदना या अगम गगन-प्रसार!
नील उतार तारे
खो गया पतझार में ही
मधुर बाल वसन्त रे!

नत रहेगी रजत राका
चिर-अमा की यामिनी फिर
मेघ गरजेंगे गिरा किसके
हृदय पर दामिनी फिर?
बस कि हम होंगे न, यों—
जग है अनादि अनन्त रे!
लक्ष्य-पथ का अन्त रे!

ज्ञान टोकरियों-भरा
बैठें लगाकर हाट
भर सकें औंधे भरें घट
हैं पड़े प्रति घाट!
कुछ कहें उद्धव, कहें कुछ
कण्टकित वन फूल
एक दूजे को न टेरे,
हहर हेरे धूल!

गिरि-गुफाओं में हमारी
एक दिन, भर सांस,
कह रही चन्द्रावली थी
बन गई थी बांस !
खो गए थे 'वो' कहीं -
हम अथक श्रम कर शान्त,
लौट चलने को नहीं चन्द्रा
कि कोमल कान्त !

किन्तु अन्तर प्रखर यामुन-जल
बिदूर - सुदूर
मिलन के उल्लास से
उद्दाम था भरपूर !
शिखर-शृङ्खल झनझनाता
स्वर कढ़ा लयमान
राधिका के अनुभवों का
लगी गाने गान !

महारण्य में मुझे छोड़ते
यह भी याद न आया ?
जहां - जहां आलोक,
रहेगी वहीं - वहीं पर छाया !

कब से परख रहा तू मुझको,
पर न अभी तक जाना;
कैसी मैं रहस्यमय ! निज को
तभी नहीं पहचाना !

तू निर्मल, मेरा मन तो
तुझमें ही तुरत समाया
महारण्य में मुझे छोड़ते
यह भी याद न आया ?

इधर - उधर देखते - देखते
साथ छोड़ देता है,
थककर मेरे रुकते - रुकते
हाथ छोड़ देता है,
कहां चाहता तू छिपना ?
तेरी प्रकाश ही काया !
महारण्य में मुझे छोड़ते
यह भी याद न आया ?

रूप-गन्ध, रस, परस—सभी से
तो पहले बहलाया
बतला, किसका मोह दिखाएगी
अब तेरी माया !
सब कुछ खोकर ही तो निष्ठुर,
मैंने तुझको पाया !
महारण्य में मुझे छोड़ते
यह भी याद न आया ?

ठौर एक दिखा, जहां
नित संगियों के संग
खेलते थे नील-पीत
कि धूलि - धूसर रंग !

ढूंढ़ती थीं रंग आंखें
सघन पांखें खोल
भरा अंधियारा कि नौ मन
दिया काजल घोल !

खांड़ घर की खुरखुरी
लगती सड़ा गुड़ और
बहुत मीठा यदि मिला
वाहर कि बन कर चौर !
हंसी चन्द्रा ढूंढ़ने पर
क्यों मिलें वे शब्द
अर्थ पर अधिकार पाते
बीत जाते अब्द !

कर्दमित जल में तिरंगे
हरे पुरइन - पात
क्यों स्फटिक-मणि-भूमि होगी
पद्म - सद्म सुजात ?
ऐन्द्रजालिक ने पसारा
इन्द्रजाल अछोर
चलो, लौट चलें, रखा क्या
सघन वन की ओर ?

मुंह उठाए मैं रही चलती,
न मुंह को बांध
फाड़ मुंह कहती भला क्या,
कुछ कहा सुर साध !

अधिक अकथ संवारने को ही
हुआ संगीत
वेदना कण - कण सघन वन
नाम पाती 'प्रीत' !

कैसे लौट चलूं—पद-पद पर
प्रिय - पद - रेखा री !
आज मिलें या कल,
अदृष्ट को किसने देखा री ?

अलि, अब निकल पड़ी हूं;
क्या चिन्ता वह रुकें, मत रुकें,
मैं भी नहीं खड़ी हूं !
आवश्यक कर्तव्य मार्ग पर
बढ़ते चलना री
आशा, स्नेह रहे, दीपक को
केवल बलना री

बतला, इतर, अपर क्या ?
सब दिन सूना विपिन ही भला,
प्रिय - विहीन री, घर क्या ?
पहुंचूंगी जब जहां न कोई
तेरा - मेरा री,
एकाकार दिशाएं, स्थिर
आलोक, अंधेरा री,

थककर गिर जाऊंगी,
निश्चय ही उस क्षण अपने को
प्रिय - पद पर पाऊंगी !

एक दिन थी रूप गरिमा की
समुज्ज्वल कान्ति,
लास्यलीला - लोल पद
विरजा कि ब्रजरज - शान्ति !
गतागत करती हुई
झरती हुई - सी फूल
अधर पर उर - रुधिर,
थी स्वर में पिरोती शूल !

पी न शीतल जल नयन का,
जल न मन की आग
बहुर आया कौन,
मौन हुआ न औड़व राग ?
लय न बांधी स्वर बिखर कर
रह गया चहुं ओर—
पञ्च तत्त्वों को भिगोती
थी सुरों में बोर !

कर अङ्कित अपने चरणचिह्न
कैसे फिर भूल गया रे ?
तेरे ही मरु - पथ में मेरा
जीवन बन धूल गया रे !
मैं ही अपना न सकी, कैसे
कहती उसको बीराना,
मैं पीछे बाढ़ - संग पहुंची,
ढह पहले कूल गया रे !

अर्पण करने को बढ़-चढ़ कर
कुछ ढूंढ़ रही थी, पाया
टुक उठता ऊपर,
उसांस से ही झर फूल गया रे !
ज्यों ही मैंने निज खोल हृदय
तुझसे मिलने की ठानी,
कुछ चुभा, उजाड़ समझ कर था
कोई रख शूल गया रे !

बालुका तट के निकट
नि:शब्द बैठी मुग्ध
एक दिन लहरें रही गिन
थी न दधि या दुग्ध !
बेचने कोई गई थी,
शून्य था साकार
गूंज चन्द्रा की
सुनाई दी न दी - झङ्कार !

जल छटाछट उछल-उछल
सका पुलिन न उछाल
मान सच बच गया
प्राण-तरङ्ग थी उत्ताल !
झुक रहा चन्दन भले था,
वन सुगन्ध - सुगन्ध
स्वर चढ़े थे गगन
झिलमिल शिथिल कर तन-बन्ध !

कातर स्वर से किसे पुकारूं
जब कोई अपना भी हो !

बन्द नहीं मैं अन्ध दृगों से
निमिष - निमिष अनिमिष देखूं,
नील जवनिका के भीतर
कुछ सत्य नहीं, सपना भी हो !

बांह पसार छांह में शीतल
जागूं ? सोई पड़ी रहूं ?
मरु - उर - से मुर्मुर सैकत में
चल आतप तपना भी हो !

भूरी मिट्टी, हरी घास पर
कुछ उज्जवल सुनील लिखता,
कैसे कहूं शब्द वह जिसका
मना मौन जपना भी हो !

चांदनी में तड़ित कौंधी—
रासमणि का हास
सिन्धु को था बिन्दु - सा
दिखला रहा आकाश !
अनल जलता था अनिल में
स्पर्श गन्ध - विहीन
प्रतनु, लघु, निर्भार अवनी
बनी गगन नवीन !

ज्ञान - वृद्ध समृद्ध उद्धव
सूर्य का ले तेज
ब्रज पधारे किरण-किरण
हुई सुमन की सेज !
लगा लौ देने
लहक कर रूप का अङ्गार
प्रकट प्रेमा में हुआ
निर्धूम - सा शृङ्गार !

बात ललिता से हुई होती
न जाते देश
उमग पहनाते उसे
पावक कि जावक वेश !
एकटक मग जोहती थी
पोहती थी माल
तनिक रूपान्तर,
नहीं मुरली, बजाते गाल !

छवि अनोखी देखते हम
बजा करतल - ताल
सङ्ग चन्द्रा के तरङ्गित-अङ्ग
कुसुमित डाल !
पंख फैलाए उड़ी चलती
अमन्द सुगन्ध
गांठ खुल जाती हृदय की
शिथिल होते बन्ध !

हो सका ऐसा न, गहराया न
उनका रङ्ग,
निराकार न कर सके
साकार देखे अङ्ग !
त्रिगुण था निर्गुण हुआ
व्रज विरज, व्याकुल शान्त
गोपिकाओं में गए दिख
गोपिका के कान्त !

वर्ण गुंजा का प्रतीक्षारत
नयन रतनार
मोर पंख उलझ - बिथुर कर
हुआ कुन्तल भार !
हरे बांसों की भरी
सांसें स्वरित एकान्त,
गोपिकाओं में गए दिख
गोपिका के कान्त !

चित्त वृत्ति - निरोध ही यदि
योग प्रीति अनन्य
कुछ नहीं मति गति नियामक
नियति कोई अन्य ?
वन लताओं ने बताओ
क्यों कुसुम शृङ्गार
मुकुल अञ्चल वसन पल्लव
दिए फेंक उतार ?

निष्प्रयोजन तो न हंससुता
गई रे सूख
लहर गिन हारे किनारे
जलन - जल कि मयूख ?
ज्ञान - गुरु ने प्राण देखे,
सुनी स्वर - झङ्कार
शब्द गीत न हों, अतीत
दिखा उन्हें साकार !

तोल आंखों पर, झलक झीनी
हृदय में झांक
वह सघन अज्ञान
जिसके हो न सकती फांक !
धन अकिञ्चन का, विनय का
लख अडिग अभिमान
कुछ अमोल न बोल पाए
भक्त को भगवान !

श्याम सुन्दर का न होगा
प्राणहर सन्देश
वह मनोहर मधुर रूप
न छद्म का था वेश !
दुग्ध-दशन विमुग्ध-हसन
विशुद्ध मन गोपाल
तीक्ष्ण तर्कों कब निकाली
बाल की थी खाल ?

ज्ञान-भानु अखण्ड - मण्डल
सचिव उद्धव और
तर्क कर्कश शब्द-जाल
बिछा गए इस ठौर !
मधुर रस प्रज्ञा-प्रखर का,
ऋत - अमृत - सृत बिन्दु
श्याम चिर अभिराम
वृन्दा - नभ - नवोदित इन्दु !

श्याम जलधर,
काम उसका बरसना जलधार
सस्य - श्यामल बसुमती ही
नील नभ निर्भार !
वह उचोट नहीं
उझकते हृदय का उझकून
हृदय-उदय न हो
निरी काया, अचेतन, न्यून !

दूर का आह्वान अपना
श्याम, हो भी पास,
वह उदास-उदास घर में
बरसता हो हास !
सोचता रहता नया कुछ,
बीन कर प्राचीन
चक्रवात किसे उड़ाए
वह स्वयं में लीन !

वह प्रतीक्षा में किसी की,
चिर घिरा चहुं ओर,
यों कहा करता अनागत
निशि नहीं, है भोर !
स्वप्न को समझो अवग्रह
यदि न सत्य प्रयास
जूझते रवि-शशि तिमिर से
मांगते न प्रकाश !

उमस की होती घड़ी
जब बैठता निष्कर्म
बोलता उत्साह से ही
चर्म बनता वर्म !
कंस के भेजे हुओं को
उड़ा दंश - समान
और कैसे था किलकता
छेड़ वंशी - तान !

देश का मानस अमावस
है विनिद्र सतन्द्र
था कहा करता बनाना
शरत् - पूनम - चन्द्र !
आधिग्रस्त परम्पराओं को
अरप आरोग्य
काल-लालित निकष पर कस
दूं बना उपभोग्य !

प्रेरणा ही सामयिक होगी
कि लक्ष्य भविष्य
प्रबल कालानल बना पाए
जिसे न हविष्य !
एक युग में जन्म ले मर
जाय, जो सिद्धान्त
फलद हो तत्काल
पर वह नहीं शान्त नितान्त !

शुद्ध करने में विचारों को
समय बलवान
ब्रह्मचर्य कठोर है, पर
शौर्य्य का प्रतिमान !
बीत जाती हैं अलक्ष्य
शताब्दियां, उत्कर्ष
पा नहीं पाता बिना
सन्तत किए संघर्ष !

श्याम की है कामना
मृत धारणाएं मेट
ऊर्णनाभ उजाल जाला
ले संभाल समेट !
बोलता था, छोड़ना होगा
हमारा संग
अन्तरङ्ग रंगा हुआ, चढ़ना
नहीं नव - रंग !

हो नुकीला किन्तु हर पत्थर
न हीरक - खण्ड
अनगिनत किरणें बिछीं तिरछी
नहीं मार्तण्ड !
क्यों किसी की प्रगति की
बाधा बनूं मैं मौन
एक राधा जनम हारे,
और राधा कौन ?

नयन की नीली बिजलियों में
न चमके बाण
नाग के काटे, न घाटे में
रहे हैं प्राण !
एक सन्नाटा सिरजने को
बजी थी बीन
रूप का ऐश्वर्य्य देख चुकी
नहीं मैं दीन !

देख लूंगी कटु सचाई की
तरेरी आंख
उमग उजड़े उपवनों में
तड़फड़ाती पांख !
घट अंधेरी घाटियों में
प्रकट हो आलोक
हृदय का क्या, फट पड़े भी
तो न मानूं शोक !

मेरु-मन्दर-से कहीं हों वृक्ष,
मैं तो छांह—
शरद नीरद की, प्रियाल—
प्रियंगु कण्टक - बांह !
शप्त भव संतप्त अनुभव
दौंगरे की बूंद
चिलचिलाती धूप में
गति सतत आंखें मूंद !

गति ! हंसी चन्द्रा कभी थी,
स्फटिक की चट्टान—
है पिघल सकती कभी क्या
चन्द्रकान्त - समान ?
स्तूप-सा ऊंचा उठा
नवनीत शीत-तुषार
मैं भले होऊं, नहीं हूं
ठोस उच्च विचार !

भाव परिवर्तन कठिन,
दिन भर विचार संवार—
छांट छेनी से गढ़े
अपरूप का संभार
एकरसता इधर, रस
के उधर हों नवरंग,
सिन्धु गहराई उछाले,
मैं न तृषित तरङ्ग !

अभ्युदय या ह्रास क्या,
कोई करे उपहास
जो मुझे भाया, किया
निज पर किया विश्वास !
सुन रही हो यह चहक,
प्रिय पक्षियों का रोर
मैं सरक पाती कहीं
इनके गले की ओर !

उमड़ती तब भी न सुरसरि
तरणि - तनया - तीर
गुंथ कहीं जाती कि तारों में
बहा हिम - नीर !
इन्हीं मद-माते खगों में
उडुगणों में एक
खो गई होती कहीं,
रहती प्रणय की टेक !

गुच्छ-गुच्छ सुपर्ण में
घन-सुमन-वन में दूब—
डूब जाती है, दमित—
व्यक्तित्व से क्या ऊब !
मैं कहीं खोती लहकती
लौ-तले की छांह
गति समीरण की शिथिल,
रुकती किसी की राह ?

कण्ठ होगा स्वच्छ,
मैं करती रहूं संघर्ष
बोल हों मेरे सभी जैसे
प्रकृत आदर्श !
वन्य-निर्झर सहज स्वर
झरता सुने न पहाड़
टुक हिलाता सिर,
उठाता टुक उसे कर लाड़ !

स्वर्ण किरणें सूर्य की,
तम - तूर्य - तुमुल - निनाद—
सुन सहमती हैं कि
थमती, छिड़े वाद-विवाद !
बस कि हैं वे फैलती
तम सहमता सोन्माद,
है प्रकाश प्रथम प्रकटता
नाद उसके बाद !

गन्ध होती बन्द है
कैसे कहे मुंह खोल
खोल पंखड़ियां उसे दें
देखने कल्लोल !
लोल होती एक झोंके में
पवन के डाल
डाल देती शून्य के पद पर
मरन्द प्रवाल !

थाह पा ली है दृगों की
मद-मृगों की हार
वह कहां निश्छल सरलता
यह तरल विस्तार !
पुच्छ-गुच्छ उठा घटा लख
नाचते वन-मोर
मोर-मुकुट पहन नचाते
हरि बहा कर लोर !

चेतना के चैत्रवन में
दिव्य परिमल व्याप्त
अनसुनी अनबोल ध्वनियां
श्रुति-कुहर को प्राप्त !
चयन अन्तर्नयन
कर लें रश्मियों के फूल
एक वृन्दा और जिसमें
नहीं उड़ती धूल !

इन्द्रजाल समेट गोवर्द्धन
उठा कर बाहु
कह रहा है पूर्ण चन्द्र
न किन्तु केतु न राहु
ताकते इस ओर, हैं
नक्षत्र-मण्डल छत्र—
तान कर अनिमेष रहता
चमकता सर्वत्र !

मुख नहीं, सुषमा-मुकुर
उर का मधुर आकार
विरज रज चन्दन-करण
लावण्य का आसार !
और क्या संसार में है
दर्शनीय अनूप
छोड़कर स्वर्लोक का-सा मोड़
वह प्रिय रूप !

कीर्ति की कन्या करे क्या
और कीर्ति बटोर
कौन पन्थ पकड़ पहुंचती ?
हुई चन्द्र-चकोर !
आग हो अनुराग ने
कर दी जला कर राख
वह नहीं कंचन अकिञ्चन
प्रज्वलित है लाख !

कल्पतरु के फल ललकते—
मैं गई क्यों भूल
अचल अञ्चल भर गया
कैसे,—न तोड़े फूल !
ज्योति अपनी प्राणमणि की
दी गंवा, दृग बन्द—
हो रही थी सत्य-कम्पित
स्वप्न का आनन्द !

जा सकेंगे वह हमें
तज कर, न था विश्वास
वह करें विश्वासघात
पुजे किसी की आस !
हम न खोलेंगे हृदय,
पंजर रहेगा बन्द
उड़ सकेंगे बात करते
वह नहीं स्वच्छन्द !

तन भले हो साथ, मन
उनके न होगा हाथ
चित्त - वृत्ति - निरोध हम
लें सीख नत कर माथ !
श्रान्त होगा किन्तु अन्तर
कठिन भर झङ्कार—
श्रुति कुहर के पार
प्राणों में पुकार-पुकार !

कौन ठग सकता ठगों को
ज्ञान का व्यापार
दूसरों में चल निकलता,
बालुका - विस्तार !
नाविकों को है बुलाता,
नाव कर लो पार
कांप उठते हैं किनारे
देख भाटा - ज्वार !

दृष्टि हो आत्मीयता की,
पीड़ितों की प्राण
मूल्यवान अधिक न इससे
और कोई ज्ञान !
दृष्टिकोण निजी न
दूजे का करे अपमान
व्यर्थ सार्थकता न ढूंढ़े
तर्क का प्रतिमान !

बुद्धिमान वही जिसे
अज्ञान का हो ज्ञान
हाट - बाट बिके - बिकाए,
ज्ञान का अपमान !
किसे जिज्ञासा यहां थी,
कौन सुनता ज्ञान
दग्ध जीवन मलय - चन्दन से
न पाता त्राण !

प्रश्न ऊलजलूल हों,
उत्तर कि ऊलजलूल
यह नहीं दर्शन, न योग,
न छद्म टालमटूल !
जो न जीवन को उठाए
वह न योग न क्षेम
ज्ञान का हो नाम,
आता काम केवल प्रेम !

कौन निस्तृष है यहां
यमुना उछाले नीर
धार है मझधार में
नववेलि - वल्लरि तीर !
सिद्ध वचन कभी नहीं
प्रतिषिद्ध होता हन्त
शरद विरद न खो, न धो
सुरभित - दिगन्त वसन्त

कमलनाल न बांध सकता
विषम वारण - दन्त
बंध स्वयं जाता सुरीला
भ्रमर गायक सन्त !
सत्य का आह्वान सुनता
गगन श्रवण - विहीन
आर्त क्रन्दन तप्त मरु में
छटपटाता मीन !

लुट गई अनुभूति क्या ?
हम हों लुटे इस ठौर
रुधिर शीतल हो गया क्या
पीत तरुवर मौर !
है बहुत जीना, बहुत
मरना अभी है शेष
किसी ने माना न,
अनजाना पिया का देश !

आंसुओं के माप से
मापे गए दुख-द्वन्द्व
तुल हंसी की ही तुला पर
सुख सभी स्वच्छन्द ?
लोक-निन्दा क्यों करे पीड़ित ?
सकें जो जान—
गीत वह अस्तित्व का,
अलि का सुमन पर गान !

प्रणय-धर्म अकर्मकों को
है सिखाता कर्म
वेणु पर फिरती उंगलियां
पोंछती हैं धर्म !
नियति पर पुरुषार्थ की
प्रभुता प्रकाशित हो न
प्रणय हो प्रेरक न,
जीवन मरण का हो कोण !

तिमिर खाता है, उगलता—
ज्वलित कालिख दीप,
बूंद स्वाती की निगल
मोती सिरजती सीप !
कर्म में होते प्रकट कारण,
प्रणय प्रणिधान
हो नहीं सकता कि, खा
नवनीत हो पाषाण !

है नहीं निरपेक्ष कोई
सृजन या संहार
था हुआ आरम्भ जब
होता न उपसंहार ?
तरणितनया को मिला जल,
नीलकमल - विहार
ऊर्ध्व-लोचन नीलकमल
रहा कि तरणि निहार !

प्रणय है पर्य्याप्त,
किन्तु अनाप्त मन का मान—
भी नहीं मन मानता,
स्वीकारते हैं प्राण !
धारणा कुछ और व्रत की,
पारणा कुछ और,
पा सकेगा लक्ष्य में
अन्तर्विरोध न ठौर !

मुग्ध विस्मय चेतना का
उल्लसित उत्साह
अन्तरङ्गतरङ्ग, - क्षिति पर
क्षितिज की - सी चाह, !
निर्विकल्प अकल - अकल्पित
अणु - प्रतनु अनुभूति
प्रकट तल पर थी हुई
प्रच्छन्न एक विभूति !

मलय पवन समान
आनन पर खिला कर फूल
धुन्ध छांट हिमार्त्त दृग की
भर किरण की धूल !
एक अद्भुत अनसुने
सन्देश से भर कान
दे गया विश्वास कोई
चिर - विकल कर प्राण !

एक आकस्मिक प्रकाश,
अगम गगन - विस्तार
एक तुङ्ग - तरङ्ग
करती क्षुब्ध पारावार !
रूप का उच्छ्राय
सुरसौन्दर्य्य का कैलास
स्तब्ध मन को कर गया
चैतन्य का अधिवास !

थी बहाए जा रही यमुना
कहीं निष्काम
लक्ष्य - मिलन अलक्ष्य
रह पाया न था उद्दाम !
व्यक्ति वैयक्तिक न था,
अर्पण विसर्जन भी न,
जुड़ सिकुड़ न सका 'अहम्',
मुड़ता कहीं प्राचीन ?

चित नित चञ्चल री !
प्राण न मान बचा सकते
खुल पुलकित अञ्चल री !

कुहुक - कुहुक कोयल प्रतिपल
भरती सिहरन तरु - नग में
भीगा - भीगा राग रहस
अंकता डगमग पग - पग में
देख रेख सखि, पथ में रथ की
दृग-युग छल - छल री !

अपने लघु जीवन-वन का
पहचाना कोना - कोना,
गोपन - गर्भ छिपाए था
अब तक यह टोना - मोना,
आज शिला में मिला चपल जल
करता कल-कल री !

अपना अपनापन भी !
तू सौरभ - सा बसा रहे,
पर मेरा सुमन सुमन भी हो !

चाहूँगी क्यों बिना दुखों के
मैं क्षण भर भी सुख पाना ?
हो नित नूतन यदि प्रतीत
प्रिय-मिलन, क्षणिक बिछुड़न भी हो !

कभी साध थी, अपनी
कुटिया में मैं तुझे बुलाऊंगी,
तेरे चरणों में अर्पण को
यदि अपना जीवन भी हो !

आँखें ही तो हैं भरी हुई
सूने प्राणों में आ जा रे!

गिरियों से घिरा हुआ, निर्जन
मेरा निष्फल, जड़ जीवन वन;
मैं क्या हंसती, मैं क्यों रोती,
—तू एक बार तो गा जा रे!

उजड़ा है, भरा अंधेरा है,
फिर भी जब यह घर तेरा है,
क्या रत्नदीप, मिट्टी का ही
दीपक तो एक जला जा रे!

तू मिले, अरप दूं प्राण भी!
सूखी मिट्टी पर छोड़ चलूं,
जीवन के गीले गान भी!

बहुरंग मेघ की फांकों से
पूनम का चन्दा झांक रहा,
सोई खोई - सी धरती की
छाया - छवि उर में आंक रहा
निष्पलक पलक पर प्राण,
झलक पा लूं यदि एक बार अब भी,
ठुकरा दूं कहकर महाशाप,
जीवन का यह वरदान भी!

कांपूं कदम्ब के पातों में,
झुलसूं मकरन्द - पराग भरे
सर - सरि भर - भर रोऊं,
खिल-खिल विहसूं फूलों में आग भरे,

निष्ठुर उर में भी हूक उठे,
बेसुध कोयल - सी कूक उड़ूं,
पागल हो जाऊं, धो जाऊं
दृग से तू - मैं का ज्ञान भी !

बहुत पास मैं रही तुम्हारे,
इसीलिए पहचान सके ना !
बहुत प्रमाण दिए ममता के,
इसीलिए तुम मान सके ना !
निशिदिन नाम तुम्हारा रटना,
कोई बात न कोई घटना,
कौन मर्म की रही कहानी,
इसीलिए तुम जान सके ना !

लय मनमानी, सुर उर - छीना,
बहुत सजाई अपनी वीणा,
निर्मम, तुम्हें मोहने वाले
इसीलिए बज गान सके ना !
खोल रखे सब द्वार निरन्तर,
जगा रहा प्रतिपल, चल अन्तर
निकले प्राण तुम्हें ले आने,
इसीलिए तुम आ न सके ! ना ?

कैसे बन्द रखूं चल लोचन,
प्रिय अति सुन्दर हे !
कैसे विकल कलश में भर लूं
सकल समुन्दर हे !

जान विजन क्षण आता,
सजल-नयन सखि, निरख न पाती
तब तक निर्दय जाता !

मर्मर कर उठते तरु-पल्लव
सुन उसका रव हे,
बदल-बदल कर रूप-रंग
चलता नित नव-नव हे !

चरण चाप पहचानी,
तना-तना रहता दहता
क्यों कर अपनी मनमानी !

कह, कैसे अपना घर भर लूं,
वह सबका धन हे,
कैसे रोक रखूं जब सब का
वह अनिकेतन हे !

अलख लगाता फेरी,
कहां-कहां किस-किस ने उसकी
राह आह भर हेरी !

भाव - विह्वलता सुरों की
परख हरख उदास
बह चली यमुना समोने
शून्य में उच्छ्वास !
पवन पातों से घिरी
फूलों संवार सुवास
उड़ चली चञ्चल अचल को
प्राप्त हो आश्वास !

चांदनी में थी लगी पड़ने
कछार - दरार
यामिनी ने चन्द्रतन्त्री
रखी तार उतार !
पीत पोखर पहर - लहर
उठा हुआ था शान्त
बतकही करते हुआ था
चाहता कि निशान्त !

हरित लतिकाएं नमित - दल
मुकुल - कुसुम - विहीन
ग्रह - अनुग्रह
चकित उडु-वृत रोहिणी-सी दीन !
रासमणि परिहास - कम्पित
अधर, नयन सनीर
थीं निहार रही पुलिन - पर
अनिल - नित वानीर !

नन्द नन्दन चरण-नख छवि—
विच्छुरित नीलाभ—
अरुण क्षितितल मोरपंखी
दीखता था, लाभ !
था भला क्या मोर - मुकुट
कि काकपक्ष संवार
शीश पर ढोए फिरे हरि ?
समझते न गंवार !

इन्द्र धनु सतरंग करते
तोड़ - मोड़ त्रिभङ्ग
वेणु भरती रेणु में स्वर
फहर अम्बर रंग !
नील कमल खिले मुंदे
दृग - द्वय प्रभाकर - चन्द्र
एक पलक पुलक-चपल-दल,
एक पलक सतन्द्र !

कामनाएं विश्व भर की
निःस्व - सी पद - लीन
कमल कोमल, तरुण अरुण
नवीन औ' प्राचीन !
ललित किसलय - निलय
अपने भी नयन थे भृङ्ग,
गुञ्जरित करते सरोवर,
नील नभ गिरि - शृङ्ग !

यश अरजने वह गए
अपयश हमें दे सन्त
दासियां उनकी सभी ऋतुएं,
सुदास दिगन्त !
हन्त किन्तु शिशिर तिमिर
अपना प्रदीप्त वसन्त
शान्त धन एकान्त जीवन,
और अन्त अनन्त !

रस बरस कर थे चुके जब,
बहा ज्ञान - प्रवाह
बांसुरी का मोल बोले
आज शिथिल उछाह !
कामना मनुहार की थी,
हार है उद्धार,
लुट गया मधु - कोष
उर पर छा गया नीहार !

लय हुआ उच्छ्वास
मन के दहन में बन भाप
शून्य नभ भरते रहेंगे अगण
उडुगण आप !
तिमिर प्राङ्गण का हरेगा
चण्ड हो मार्तण्ड
घर भरेगा बन्द
चन्दा का सफल पाखण्ड !

यह विरात्र नया अयाचित
ला रहा आलोक
चक्रवाक अशोक हों
वादित्र - पूरित लोक !
चारु तोरण दीप्त मणि - माणिक्य
कांचन - चूर्ण
तन रहा प्राची - उदीची—
कोण किरण - प्रपूर्ण !

हार औ' केयूर की उलझन
न नाल - मृणाल
मेट पाएंगे, झटक कर
मुक्त कुन्तल - जाल !
लौटना होगा हमें
सुन लोक का आह्वान
कर्म - धर्म - निमग्न हों,
अटके कहीं हों प्राण !

दमन शोषक भावनाओं का
शमन आक्रोश
कर्म ही है सर्व - जन -
कल्याणकारी कोश !
हो न रचनात्मक विकास
विषम न हो सोपान,
कर्म में अटकें न हम,
अटके कहीं हों प्राण !

कर्म दर्पण हो हमारा,
झांक ले जग फांक
स्वर्ग के हों नयन, चन्द्रक
नाम तो है नाक !
पृथु विलोचन प्रतनु-तनु
कर्त्तव्य कर्म - प्रवीण
हृदय-हरण हुआ, नहीं हम
हृदय - हीन नवीन !

नयन के अन्तःस्फुरण से
हम अशब्द अनाम
करुण तरुण तमाल को
अविराम अरप प्रणाम !
हेरते संसार - सरणि
बिसारते परिणाम
क्लम-कलित-मुख दलित-दुख-सुख
सतत करते काम !

इन्हीं आंखों ने उन्हें
देखा कभी था कान्त
इन्हीं आंखों में रहे बस
वह अखिल - एकान्त !
अब उन्हें यदि कर्म-कोलाहल
अधिक प्रिय आज
और आंखों की कथा
कहनी नहीं तज लाज !

हरण कर निश्चेष्ट तम का
ज्योति - वैभव जाग,
लहलहाए विश्व - वन में
भर मरन्द - पराग !
देख भ्रूकुञ्चन अकिञ्चन
जन न छोड़ें मान,
गढ़ नया इतिहास
होगा लोक का कल्याण !

प्यार हमने है किया
असि - धार पर धर पांव
ठौर बरसाने नहीं था,
नन्दगांव न ठांव !
है न आत्मार्पण विराम,
अनन्यता न अकाम,
जल उजाले स्नेह
यदि कर्मण्यता का नाम !

राजमल्लों को पछाड़
चढ़े तड़प कर मञ्च
अङ्गरक्षक दनुज - दल को
ही बनाकर पञ्च !
सामने सबके दबोचा
पल न सोचा काल
कंस को भेजा नृशंस - नगर
मचा भूचाल !

तब नहीं थे जानते क्या,
हम न उसके योग्य
तरुण डाल तमाल तरु के
अरुण पल्लव भोग्य ?
दैत्य कितने थे हुए,
उसके कलेऊ नित्य
नाम का हो चन्द्र पर है
काम से आदित्य !

अग्रगामी पर नहीं स्थिर,
मधुर, पर न अनन्त
प्रकृति का प्रतिदान परिमल
किन्तु वह न वसन्त !
बोलता सुर में, अखण्डित
शब्द का भण्डार
मृदु मृदुल, ढुलमुल नहीं पर,
शक्ति कूटागार !

भाव राजस, मेघ - मेदुर
स्वर - अनश्वर मन्द्र
त्याग - तत्पर आग - सा
समिधा जला निस्तन्द्र !
जो हुआ वह अनहुए के
रन्ध्र का उद्योत
चन्द्र घन वन में छिपा,
हम ढूंढ़ते खद्योत !

रहे मौन भविष्यवक्ता,
कर - बदर संसार
एक है उसके लिए बस
जो व्यतीत निहार !
है सदैव भविष्य गढ़ता
दैव-योग विसार
रूप अनुपम, बल अतुल है,
बुद्धि अपरम्पार !

चार धाराएं मिली हैं
क्या कहें पुरुषार्थ
राग का सागर लहरता
वह स्वयं नि:स्वार्थ !
व्यक्ति का नि:स्पृह विसर्जन,
आत्म मन्थन शुद्ध,
क्या विराग नहीं भुलावा ?
वह विहाग प्रबुद्ध !

तिमिर - शिविर-समान नभ में
राजसिंह प्रकाश
हेरता चहुं ओर है
जब छोड़ता निश्वास !
ज्योति - धार पिए जिए—
कितने - तृषित हैं प्राण
अचल अचला पर पड़े
हैं चाहते अवसान ?

चांदनी अञ्चल विमल थी
तन कि वन्दनवार
गन्ध - भर अरविन्द
छल-छल आंसुओं को धार !
मन न था स्वच्छन्द,
मन्दिर बन्द आठों याम
मति निगोड़ी स्थिर भगोड़ी—
गगन - प्रतिमा थाम !

धूप को छाया मिली,
नृप कंस को विश्राम
थक गया था, सन्तुलन खो
गति - निरत अविराम !
हम गंवा बैठे रतन धन
छद्मलीन गंवार
भर गया भण्डार,
अब संसार है संसार !

अब यहां तम का बसेरा
हां, वहां है धाम
नयन में हैं श्वेत सपने,
सत्य होगा श्याम !
गन्ध अन्ध नहीं कि भटके
पवन पावन त्याग,
समव्यथा से आर्द्र दृग
पहचानते उर - आग !

वेणु रेणु - भरा, हुए सब
रन्ध्र उसके बन्द
खोल सुर पाती नहीं
उर बन्द, सांसें मन्द !
कौन गाकर दुख सुनाए,
शब्द का क्या अर्थ
अर्थ हो निःशब्द, तब स्वर
हो कि सिद्ध समर्थ !

एक मन प्रत्येक मन को
जानता यदि ठीक
जानने - पहचानने की
तब न कटती लीक !
और पूर्वाग्रह, पड़ेगी
और मन में गांठ,
ढूंढ़ते समवेदना,
हो जायगा मन काठ !

ध्वंस होना था नहीं पर कंस
का ही एक,
उन सभी का वास्तविकता
जिन्हें अपनी टेक !
गढ़ रखो सिद्धान्त, किन्तु
परंपरा से मुक्ति
मिल नहीं सकती कि अनगढ़
शब्द गढ़ते युक्ति !

ध्वंस होना था,
विधाता का नृशंस विधान,
रास शुद्ध कला - विलास
रहा न था द्युतिमान !
तोड़ता था बहुत कुछ को,
जोड़ता था प्राण,
और तन, मन, प्राण को
कितने सके सम्मान !

पतन तन का श्रेय यदि
मन को मिले आकाश,
मन न हो निष्प्राण,
प्राणों को मिले अवकाश !
यदि हुआ यह, अब न होगा,
यदि हुआ न, नितान्त—
है इसे होना, घुमाता
वक्र चक्र कृतान्त !

एक ठोस विचार के
टुकड़े करें यदि चार
तीन होंगे खोखले
चौथा अनात्म असार !
एक प्रतिभा सत्य
अनुभव के विना अनुभाव
एक अनुभव सत्य - विस्तारक
विभिन्न - प्रभाव !

हम जभी जनमे
मिटाया काल ने वह काल
शिशु गया तो तरुण आया
चल वसन्ती चाल !
रास हास - विनोद की ही
गोद में निःश्वास
छोड़ता रहता
हमारा तोड़ कर विश्वास !

अब गंवार नहीं रहेंगे
हम न हारे दांव
वह रहें नागरिक जाग्रत,
प्रिय हमें हैं गांव !
नई संस्कृति सिरघुटों पर
जब करेगी छांव
मेट मैला भाव सोएं श्रान्त
फैला पांव !

एक राजा एक रानी
अब न होंगे और
सैन्य के बल अब नहीं
साम्राज्य नत सिरमौर !
हम सभी प्रहरी बनेंगे
सजग हों सामान्य
शक्ति की प्रभुता न होगी
निःस्व को अब मान्य !

एक ही क्या कंस होगा
अंश होंगे अन्य
भोगना होगा हमें
कब तक कि जीवन वन्य ?
रास का रस पी हुए हम मत्त,
घूमें गोल,
जो कि मथुरा में हुआ,
करना हमें समतोल !

प्रणय है, अनुसरण
उनके आचरण का आज
कल हुआ हो रास,
फैले आज कितने काज !
दे रहे निर्देश, हम भी हों
खड़े निज पांव
लें न संरक्षण, स्वयं
अब सब बचाएं गांव !

आत्मनिर्भरता बढ़ेगी
हम न होंगे पास
अब न होंगे शिखरस्वामी,
अब न होगे दास !
एक साथ जला सको यदि
तुम दिए चहुंओर
जान पाओगे नहीं,
कैसे हुई निशि भोर !

समय हो अनुकूल या
प्रतिकूल, बढ़ना नित्य
दिन बनेगा, बादलों से
हो ढका आदित्य !
जड़ बची है, चेतना
तुड़ - मुड़ गई, उनई न
अपत लतिका में
कई कोंपल नई उकसीं न ?

हैं दिए संस्कार
मन को मानवीय अपूर्व
दे सका सामान्य जन को
कौन इनके पूर्व ?
आभिजात्य लिए फिरे
अपना रुधिर पहचान
स्वजन को, केवल स्वजन को,
दिया दुर्लभ ज्ञान !

है दिया जग को इन्हीं ने
एक युग - सन्देश
योग का है अर्थ समता,
विषमता ही क्लेश !
ज्ञान पर अधिकार सब का,
पूर्ण का क्या शेष
धर्म का है मर्म भूमा
भूमि सबका देश !

प्राप्त मात्र परम्परा से
है नहीं पुरुषार्थ
सिद्ध स्वार्थ कृतार्थ
या चरितार्थ लाभ परार्थ ?
हानि वैयक्तिक भले हो,
लाभ सबका लाभ,
कुमुद मुरझे किन्तु रवि का
अभ्युदय अमिताभ !

वेग रचना का उचित
अनगढ़ अभी है विश्व
धनकुबेर कि मुष्टिका भर,
विश्व अब भी निःस्व !
लुटा प्राण प्रकाश
अब भी व्योम तल से नील
स्वेद - मोती क्षेत्र भर
क्षिति का गढ़ेंगे शील !

उचित चिन्ता है,
सुदृढ़ तट हों कि सलिल प्रवाह
बह चले निर्दिष्ट दिशि को
न उथला, न अथाह !
खेत में हो रेत,
तट कटता रहे अनिवार
क्या, कृषीबल जाय मर
श्रम - जल उलीच असार ?

एक लक्ष्य विकास जीवन
का सुघटित प्रयास—
हो अशेष समग्र का
मुख पर खिले शुचि हास !
मुण्ड - मुण्ड विभिन्न - मति
हो, वक्र होंगे तुण्ड
कलह की लपटें उठा
प्रज्वलित होगा कुण्ड !

व्यष्टि और समष्टि का
है काल्पनिक ही भेद
बिन्दु मिल कर सिन्धु से
हो सिन्धु तो क्या खेद ?
सिन्धु बिन्दु बने
असम्भव, अनसुनी-सी बात
बिन्दुओं का सिन्धु भी
यों तो सफल संघात !

व्यक्ति बदलेंगे,
बनेगा निर्विवाद समाज
एक दिन होना सभी को
सरल औ' निर्व्याज !
सोख कर सागर रखेगा
कहां सूर्य निधान
बरसना ही है उसे
किरणें बचाएं मान !

रंग पर धर रंग होता
इन्द्रधनु - निर्माण
डगमगा जातो व्यवस्था,
विफल धर्म - विधान !
उठा रंग - तरङ्ग निःस्पन्दन
गगन - विस्तार
किरण - कलिकाएं खिलाता
पवन - घन - संभार !

कुसुम - कुञ्ज उजाड़ झञ्झा
बौखलाई और
पेड़ गिन लो,
तोड़ती झकझोर कर सब बौर !
प्राकृतिक उत्पात ही
होता न झञ्झावात,
द्वन्द्व उससे भी ठनेगा,
बुद्धि नव अवदात !

अर्थ क्या अस्पष्ट रेखाएं
दिखाएं मूर्ति
तूलिकाएं तीक्ष्ण,
खण्डित की घटित हो पूर्ति !
सब करें श्रम सर्व - हित
उद्दाम ही उत्साह
मानचित्र नया धरणि का
गगन का परिणाह !

घट उलटने से घटेगी
भूमि की क्या प्यास
उगलते फल वृक्ष,
पुजती क्या पवन की आस ?
दे स्वयं को तज अहं को
जो नहीं सन्तुष्ट
वह अकेला कट निकट से
विकट तुष्ट कि रुष्ट !

अधिक उच्च विचार का क्या
वाग्विलास, प्रलाप
वास्तविकता हो तुला
जिसकी न अपने आप !
फूल डंठल से बंधा,
हों बेधते भी शूल
च्युत हुआ जो वृन्त से
वह फूल तो है धूल !

ज्ञान क्या, वैराग्य क्या
मन में लगी है आग
स्वर बने जीवन सतेज
यही ज्वलित अनुराग !
चीर कर उर पीर निकले
यह गले का काम
मत सुनाई दे पुकार
न अलग अपना नाम !

व्यक्ति की गाथा झुका—
माथा सुनेगा कौन
श्रम न सामूहिक समझता
वह रहेगा मौन ?
एक की प्रभुता जनेगी
नित अमित समुदाय
सर्व का अर्पण, सभी का
व्यय, सभी की आय !

सैन्यशक्ति समेट जन
सैनिक बने प्रत्येक
छत्र एक नहीं, कि—
सामूहिक समाज-विवेक !
सजग प्रहरी हो, नियति
हो जाय भी जो प्रेय
सन्तुलित सम्पन्न मन का
वही होगा श्रेय !

अमर सुन्दरता सिरजती
नित नया सौन्दर्य्य
दृष्टि देती सृष्टि में खुल
अतुल पौर्वापर्य्य !
सहजता ऐसी, कि जैसे
गरल-मुख पर खिली मुस्कान
सरलता, जैसे गरल में
घोलती हो प्राण !

चौंक मृग-दृग की,
अघन नभ की तड़ित की कौंध
सहज सुन्दरता
उठाती स्वर्ग का-सा सौध !
रत्नसार तुषार-ज्वाला,
राशि-राशि सुगन्ध
और कुछ ढूंढे उसे लख
चख वही हैं अन्ध !

नील नभ निर्मेघ
चन्दा की बढ़ाता जोत
शून्य मन में पूर्ण
सुन्दर हुआ ओत - प्रोत !
चाह क्यों उससे अधिक की
शुद्ध बुद्धि अथाह
तम कि सर्वोत्तम कहां ?
बतला न अन्तर्दाह !

शिशिर तिमिर उसे कहो
किंवा ज्वलित आलोक
विकच बेल - बबूल मरु का
या कनेर, अशोक !
नयन रतनारे
उबारें या डुबोएं मान
क्षितिज खिंच आए
सुनाए या सतत आह्वान !

मुझे देख हंसा, डंसा
ज्यों नाग ने निर्दन्त
मैं समझ पाई न
ऋतु आई दुरन्त वसन्त !
सजग सपने नींद में
हलचल मचाते नित्य
चन्द्रमा मेरे लिए था
हो गया आदित्य !

प्राण रह पाए न घेरे में
उचित के व्यस्त
अरप आवश्यक उचित
को मैं सकी न समस्त !
रन्ध्र जैसे ढूंढ़ती हो
रजत किरण अशान्त
छेद सुन्दरता धंसी
उर था हुआ उद्भ्रान्त !

स्वप्न सुन्दरता नहीं
सौन्दर्य्य जीवन-स्रोत
बहुत कुछ कर्त्तव्य,
पर सब कुछ नहीं उद्योत !
नील नीरद पीर बरसा
बिसुध हैं मन-प्राण
ऊब डूब गया अजल
कर्त्तव्य का दिनमान !

स्वप्न हो सुन्दर
समुन्दर में उठे हिल्लोल
देखकर चन्दा प्रमन्दानिल
बने हिन्दोल !
पल्लवों को नवल मर्मर
दे सिखा मधु-गान
मैं मरूं तो स्वप्न सच को
करे जीवन-दान !

ला, पलायन ही सिखा दे
रण मरण से मांग,
एक दर्शन एक जीवन,
भैरवी कि विहाग !
दूं विचार-वसन बदल
मेरा नहीं आचार
पंथ था सौन्दर्य्य मेरा
लक्ष्य निश्चल प्यार !

कुसुमरस से मत्त षट्पद
काटता क्या कोश
खोल लोचन गगन भू पर
क्यों बरसता ओस ?
हृदय-कम्प सिचय-निचय से
हो सके जो छन्न
प्रणय भी कर्तव्य-तर्क
विवेक से अवसन्न !

गिर रहा तट कट तरणि
तनया - प्रवाह न रुद्ध
हेय है पाथेय, मानस
हंस हो क्यों क्रुद्ध ?
कौन पार उतारता है,
नाव खेता कौन
क्यों खिचा जाता
किसी का अवश-सा मन मौन ?

कुसुम-कुसुम तरङ्ग-रंग
उठा रचें उद्यान
विहग-विहग उड़े चहक
कोयल करे कलगान !
रुचि अनेक, प्रकृति विविध,
संसार का विस्तार,
एक गङ्गा को उतारे
एक कर दे पार !

पेड़-पौधे फूल-पत्ते
कुछ निहारो भूल
पपनियों में अबुझ चुभते
बंकशंकुक शूल !
गगन हो घन या
कलिन्द - नगेन्द्र - कन्या कूल
लोल दृग-हिन्दोल में
जाती वही छवि झूल !

एक ही सुषमा सुरेख
न देख मन हों तृप्त
एक झटका खा न अटका
यदि मृदुल हो दृप्त !
तो कही अनकही अग-जग
कहे कर खर व्यङ्ग
अन्तरंग न रंग बदले,
नहीं आत्मा अङ्ग !

कौंध बादल में गई बिजली
नई भर चौंध
मृत्तिका की भिति
भहरी, नई झुलसी पौध !
आज बसुधा को बहा
सकती सुधा की धार
जो जले अंखुए अंकुरते
न उनका निस्तार !

कलोल्लास - विलास
उद्घोषित हुए चढ़ शृङ्ग
सौ सुमन-मन में समाया
एक छाया - भृङ्ग !
हटा पीताम्बर कुहासा
सो कि ज्योति - स्नात
पुलक बरस, बिखेर सिहरन
किया चलदल गात !

प्रति दिवस उगती किरण
हर सांझ जाती डूब
रात-दिन की एकरसता से
न पाई ऊब !
अन्धकार अनादि और
अनन्त है आलोक
हो रहा संघर्ष युग-युग से
न हर्ष, न शोक !

प्रणय पर प्रतिबन्ध
लग सकता नहीं, निष्प्राण
नियम-धर्म न ज्ञान-ध्यान
सका कभी जो मान !
क्या परम पुरुषार्थ क्या
निःस्वार्थ स्वार्थ-परार्थ
एकतान अनन्य निष्ठा,
मरण-जीवन सार्थ !

प्रणय क्या प्रतिदान-लोलुप
रात का कि विहान
राग का ऐश्वर्य्य-चिन्तन
या विराग-प्रमाण ?
निःस्व आत्मार्पण,
निरापद विजन वन संचार
अमरबेलि-वितान जीवन
का सघन आधार !

तरुण करुणासिन्धु को
यह बिन्दु विरस उदास
क्या कहे कुवलय नयन को
धूम्र प्रथम प्रकाश !
स्निग्धशुचि अत्यन्त अन्तः-
करण को आवेग
क्या मुखर स्वर से सुनाने
का पुजाए नेग ?

पामरी अमरी, नरक का
नरवधू को मोह
हो भले, पर पल्लवी
सन्देह का सन्दोह !
है कभी क्या पालती
अनिमेष देखे विश्व
प्रणय अञ्जनहीन
खंजन नयन भी हैं निःस्व !

हम न दीन कुलीन कन्या,
कुलवधू न निरूढ़
सरल निश्छल - प्राण,
अपना मन न गहन, न गूढ़ !
दाक्ष्य औ' दाक्षिण्य में
अनुपम अलौकिक रूप
चरित अपना भी अलौकिक
रच गया उर - भूप !

काल का बल तरुण ताल—
तमाल - सा घन - मान
कालिमा ली आंज आंखों में—
असह अपमान !
मरण तारण - तरण,
निर्भय फांदना दिनमान,
प्रणय - परिभव कालकृत
मरते नहीं मन - प्राण !

याद आती बांसुरी की
अनसुनी वह टेर
बह रहा जीवन प्रतिक्षण
और मत कर देर !
एक मैं हूं इधर कलरव में
विहग के मौन
पूछता मन द्रुम, सुमन, उडुगण,
गगन से — कौन ?

कोकनद - किञ्जल्क
संग सरस पिशङ्गित - अङ्ग
भ्रमर गुंजन - गीतिका भ्रम
जब झरें स्वर - भङ्ग !
तब कहीं से बांसुरी
भरती उमंग अथोर
प्राण - गान सहज सुरीला,
गन्ध - गीला रंग !

कुहर पर्वत के दिपे थे,
क्या सुरों की जोत
उपल पिघल बता रहे थे
प्रणय का खर स्रोत !
क्या यही उन्माद,
सपने में सभी थे लीन
श्रवणहीन अदीन
फन धुन सुन रहे थे बीन !

मथ श्रवण - पथ घन - घटा
उमड़ी जला कर काल
धूम - धूम गगन न ऐसे ही,
न लहक अराल !
पुलिन जीवन - सिन्धु का
भहरा, हुआ गहरा न,
कलुष चल जल को किया
कि प्रसाद का प्रतिदान !

बांसुरी कहती, असह यह
आसुरी व्यवहार
विवश निद्रा, विरस तन्द्रा,
अलस घर - संसार !
मुंद गए सपने नयन में,
बन्द उर के द्वार
कमल दल खोलो कि
डोले मन्द मलय बयार !

प्राण तन में, मान मन में
ज्ञान जीवन में न
शेष रह पाया रहा क्या
कुछ न देन न लेन !
बांसुरी हर सांस
याद दिला रही थी नित्य
कल गया था डूब जो
यह वह नहीं आदित्य !

एक अन्धड़ में उखड़
उड़ गई डहकी डाल
एक पल भूडोल का
भागा द्विनेत्र निकाल !
सट लिपट पट से खड़ा था
एक मृग - शिशु दीन
ले गया कोई फंसा उसको
बजा कर बीन !

हृदय-पर्वत पर उदय
लेता हुआ निस्तन्द्र
अन्ध लोचन कर गया किस भांति
लोचन - चन्द्र !
सुमन - मन कौतुक निकेतन
शनि - अशनि का मान
क्यों बढ़ा कर चल दिया,
जल से हटा घट - ध्यान !

जलधि - सा गम्भीर,
पर्वत - सा समुन्नत - भाल
उर खुला आकाश,
मत्त गयन्दनन्दित चाल !
हो गया उथला, झुका सिर,
बन्द मन्दिर अन्ध,
दीप जलते हैं कहीं
लगती सुलगती गन्ध ?

रंग रही सायन्तनी छाया
अनन्त - वितान
रेणु - कण थे ताम्रपर्णी में
रहे कर स्नान !
मैं कहूं कादम्बिनी में
दामिनी की आग
थी सुलगती सुप्त नभ में
जगा दीपक - राग !

उग उठा चट्टान में अङ्कुर,
हुआ तरु नील
झोपड़ी प्रासाद में बदली,
गली समशील !
न पनघट निर्जन, न ही
पगडंडियां सुनसान
ढहे मिट्टी के घरौंदे,
क्या किया निर्माण ?

हिंस्र पशु आंसू बहाते
भूल हिंसक भाव
सीखने को चीख हम से
कुररियों को चाव !
बाल बल्लवियां बितातीं
यामिनी प्रतियाम
जानता है कौन, कितनी,
अघन विद्युद्दाम !

वाष्प-मुद्रित - नेत्र हम
देखें भले न प्रभात
रवि - किरण - चंक्रमित-
दूर्वा - दल सजल अवदात !
देखते नव नवल पल्लव
तोड़ते तरु - डोर
हिंस्र अस्त्र बहा रहे,
मृग - दृग भरे हैं लोर !

पूतना का दूध पीछे,
पिया पहले प्राण
काढ़ गाढ़ प्रणय सुनाया
वेणु ने कल गान !
यज्ञ पत्नी ने किया क्या,
कब रहा अज्ञात
दीप-शलभ-सुलभ रहे हम,
है नहीं कुछ बात !

स्वल्प-मति हम अल्पवय
निश्चय चपल अविवेक,
तात नन्द कि मात जसुमति की
वही क्यों टेक ?
ग्वाल बाल सखा कि वत्सल
वृद्ध सिद्ध सुजान
गृष्टि भूली वत्सतर अपना,
न वंशी-तान !

शुद्ध-बुद्धि विचार-चारु
हमें बताते बात
किस प्रकार असार यह
संसार हो प्रतिभात !
बह रही यमुना यहाँ
सैकत स - वेतस - पुञ्ज
सुतरु तरुण तमाल करुण
कदम्ब कुञ्ज - निकुञ्ज !

त्रिविध पवन किलोल करती
कुसुम - कालिका - संग
नीलकण्ठ सनीर नीरद निरख
पुलकित अंग !
कल कुहू इस ओर केकाऽऽ लाप
है उस ओर
बरसती रस सब समय किस की
कृपा की कोर !

जानता है मर्म जो
बकता नहीं वह धर्म
धर्म समझाता हमें
अज्ञात उसको मर्म !
धर्म का है मर्म निष्ठा,
एकतान सचेत ;
सेंत - मेत सुमति लुटा,
फूले-फले जो बेंत !

बदल मातु-पिता गए
बदला अवर परिवेश
ग्वाल-बाल न मित्र, वह
नृप वंशजों का देश!
गोपियों के हृदय केवल
नहीं नागर - बुद्धि
छोड़कर उच्छ्वास चुप होतीं
न वचन-विशुद्धि!

आज तुम द्विजराज चन्द्र
सकल कला निधि पूर्ण
कृष्ण पक्ष रहा तुम्हारा
ब्रज, किया मद चूर्ण!
गोपियों का सघन वास
तमाल वन में, वेणु—
आंधियां सुर में उठा
उर में उड़ाती रेणु!

उस दिन सुनकर जिसे हंसे तुम,
सच, क्या मुझे वही कहना था?

अन्तर्यामी, बस असमय
उपहास-व्यङ्ग्य हंस-हंस सहना था?
पागलपन थी प्रणय-प्रार्थना
वह नीरव, सुनसान, विरलता,
कहां सभ्यता सीख सकी यह
मेरी अवगुण्ठिता सरलता,

फैला कर मैला आंचल—
सपनों का, मांगी स्वच्छ सचाई
तुम कि भीख भी दे न सके तो
कल्पविटप, नीरव रहना था !

तुम क्या जानो मानोन्नत,
अपमान-डुबोई प्रणय परीक्षा
मुखर प्रखर स्वर भर करते हैं
निकष शब्द से सविष समीक्षा
कुछ अभाव था उन भावों में
जिससे कांप रही थी भाषा
मेरी अश्रुधार को पत्थर के ही
आस पास बहना था !

प्रिय-मिलन की बात—
कठिन कितनी, अवश, परवश,
बस विरह सहजात !

प्राण बन अनजान, ठाने—
एकपन की ठान,
देखता जग, विलग युग-युग से
रहे युग-गात !
जवनिका काली गई डाली,
विलोचन बन्द
बन गया मेरे लिए अब
एक स्वप्न प्रभात !

जीवन का ध्रुवतारा री!
तुम्ही बनो प्रिय, कौन दूसरा
अपना यहां सहारा री?

चौंक पड़े क्यों? तुनक प्रणय-बन्धन,
तुम मुक्त रहोगे,
न्यायाधीश स्वयं, अशङ्क-उर—
तुम अभियुक्त रहोगे,
अपनी देखरेख, अपनापन—
अपने मन की कारा री!

सुन समीर-स्वन मैं चल दूंगी
लक्ष्यहीन चुपचाप,
क्या डर, झञ्झा के झोंके हों,
या खर - कर - उत्ताप,
मेरी नाव बंधे न बंधे
लग जाए कहीं किनारा री!

बसेरा लूं तेरे वन में
बनाऊं निविड़ नीड़ क्षण में!

धूपली रूप झलमलाना
बिछाना अलक-पलक की छांह
बरसना सस्मित कुडमल-फूल
बढ़ाना बाल विटप-सी बांह
कहे चमके बिजली घन में!
बसूं मैं तेरे मन-वन में!

कृपा की बहे सुधीर समीर
पंख फैलाऊं अधिक अधीर
सुनाऊं जीवन के कुछ गीत
बनूं सारिका बनूं मैं कीर
अनगिनत साधें यों मन में!
बसेरा लूं तेरे वन में!

प्रणय विनय का सपना री!
भ्रमर प्रकृति जगती में किस
किसलय का कोई अपना री?

पारस - परस - लालसा ले
जीवन को लौह बनाया
हुआ शृङ्खला-रूप वही
अब घन प्रहार जब पाया,
कर मृग-मोह कनक बनने का
तरुण ताप में तपना री!

चले कुञ्ज की ओर तोड़ने
गुञ्जित मञ्जुल फूल
धूल-धूल हो गए नयन,
उंगली में चुभते शूल
छूते छाती छिदी व्यर्थ
वन में अब बैठ कलपना री!

गए दिवस वे दूर चूर जब
मद में यह उन्मन मन था
थी वसन्त की बात एक,
थी टेक एक, क्या जीवन था
लगती लाज आज हिय में ही
अमिय-हलाहल नपना री!

खो दूं, अब अपनापन खो दूं?
कह दूं मुकुलित-मुख से प्रियतम
फिर निर्मम कह रो दूं?

नव जीवन के प्रखर ज्वार में
बह जाऊं रस-नेह धार में
या जाग के पङ्किल उर में
पगले प्राणों को बो दूं!

तिरूं सुरभि बन पवन-पंख पर
रोमिल व्रज-रज करूं पुलक भर
या अपने उन्मन मन को
प्रिय-सुमन-माल में पो दूं?

मैं न चातकी
दरस-सरस-बिन्दु भी न
मांग हा! सकी!

शूल विजन-वन जीवन
फूल-तूल-सा तनु तन
गुन-गुन प्रिय-गुण अगणन
विकल मन, थकी!

मिलन विरह का इङ्गित
प्रणय अनय-भय-शङ्कित
उर भर मर्मर अङ्कित
मैं सुखी सखी!

सघन मेरे गगन-मन में
स्मृति तुम्हारी चांदनी-सी !

दिन गिने पलछिन अंकी
अङ्कावली ज्यों चित्रलेखा
निशित शर की नोक-सी
चुभती रही है प्रथम रेखा
योग हो कि वियोग
सांसें साधना ही नियति अपनी
दग्ध-दीधिति - कण्टकित - तनु
शिशिर-किरण - मृणालिनी-सी !

उपल हो ? आओ; पुजोगे;
प्रणय-मन्दिर रिक्त मेरा
अनल हो ? आओ न, आहुति को
हृदय अभिषिक्त मेरा
अश्रु-यमुना-स्नात, प्राणों के
प्रदीप जला निशा भर
अर्चना-आतुर जगी पीड़ा
अचल आराधनी - सी !

नवल पल्लव पर बिछी है
धुल धरा की धूल
भूल कर ही फूल करते
फूलने की भूल !
हुआ भस्म पराग
भौरों की पहन ली माल
योगिराज हुए विरज के
तरुण - नीप - तमाल !

हैं पड़ी रहती स्वजन से कट
कहीं पर आज
स्नान-ध्यान कभी कहीं करतीं
कि लगती लाज !
कुछ सुहाता है नहीं
कोई न भाती बात
योग-सा हैं साधती
सह कर असह आघात !

योग तो है आग
है देता जला अनुराग
रुद्र ने धधका दिया था
स्वगत रति का राग !
शाप दुर्वासा यती का
था सती का ताप
योग फिर आया विरज में,
समझ लें सब आप !

एक का भी प्रणय कोई
पुरुष सकता भूल
व्यूह बांध समूह में हम
विनत शतदल फूल !
इन्द्रजाल रचा, जंचा
किस भांति वह अक्रूर
किया अबला-वध
कहा सब ने कि कैसा शूर !

ऋजु-प्रकृति हम हों विभोर
नहीं निशा का भोर
है तुम्हारी वक्र कुब्जा
आज जब चितचोर !
प्राण थे तुम ले गए
तन है यहां निस्सार
युक्ति से क्या मुक्ति मिलती
हुआ जीवन भार !

नाम पारस से न लौह हुआ
हमारा स्वर्ण
ब्याल-बन्धन में पड़ा मन
तुम हुए न सुपर्ण !
लाभ यह अमिताभ
निमिष न भूल पाई नाम
हो असङ्ग, तरङ्ग से होता
कि सिन्धु ललाम !

तरण तारण तुम
हमें मझधार से भी प्यार
मन जड़ा है मुद्रिका में
तार हार निहार !
अजर-अमर हमें न होना
वह सलोना रूप
हम भरे दृग में मरें,
अपवर्ग अन्धा कूप !

तुम्हें सिंहासन मिले
मिट्टी हमें दे ठौर
तुम बने वन में रहोगे
क्या कहेंगे पौर !
लोग ऐसे भी यहां
जो राजसुख का भोग—
भोगते हैं आप, जग को
हैं सिखाते योग !

अहङ्कार बिसार अपना
कौन बोले बोल
सिन्धु अगम अगाध को ही
सोहता कल्लोल !
तज गए व्रज जब हुआ क्या
एक पल भूडोल
गगन का मुंह मलिन,
रवि-शशि का घटा क्या मोल ?

सब यथावत् चल रहा
है अचल अपनी टेक
प्रलय होगा, पर रहेगी
यह कहानी एक !
तुम परम निर्मम भुलाना
जानते हो नेह
प्रणय उजले
हम जलाना जानते हैं देह !

राजनीति रही बदलती
है बदलता राज
संहिता कल की कटेगी
जग रहा है आज !
अन्ध होगा तोड़ देगा जो
सहज सम्बन्ध
मुक्ति मांगेगा जिसे
लगता प्रणय हो बन्ध !

एक को दुख दे सभी हैं—
चाहते सुख लोग
श्रेय आत्मा को थमा
जी को लगाते भोग !
देख लो ममता हमारी
भाव समता और
आज भी हम हैं तुम्हारे
तुम रहो जिस ठौर !

दूत से अभिभूत होते,
क्या टटोला मर्म
कर्म योगी तुम हुए
सिखला हमें क्या धर्म ?
अव्यवस्थित - चित्त,
अब किस पर करें विश्वास
प्रणय यदि निष्क्रिय,
तुम्हारा योग साधे सांस !

मारते पत्थर खिलाड़ी
किन्तु सरस रसाल
मधुर फल देता, तना घायल,
तुड़ी हो डाल !
प्रणत उर पर क्या गिराया
ओ भरे आकाश
आदि से ही हम जली मिट्टी,
उगेगी घास ?

सुख कि आशुविनाशि संसृति
आर्तिवर्तनि घोर
शिशिर - शीकर हैं संजोए
दाव - पावक - छोर !
स्मित, हसित, अनमोल बोल,
कि चलन - वलन - त्रिभङ्ग
निमिष - निमिष निमेष हर
करते विसुध प्रत्यङ्ग !

साथ हम थे एक दूजे का
पकड़कर हाथ
नयन थे कितने अटकते
थे लटकते माथ !
छोड़ कर क्या तुम गए
सब ने लिया मुंह मोड़
कुल - कलङ्क निशङ्क कहते
फेंकते तृण तोड़ !

हम बुलाए थे गए
आए न अपने आप
था पता भवितव्यता का
वर बनेगा शाप !
प्रणयपर्व नहा बहाया
कलुष - भेद - दुराव
जानता था कौन,
डूबेगी पुलिन पर नाव !

धन न, सुत - सन्तति
न मांगा स्वर्ग या अपवर्ग
तुम मिले ज्यों ही
किया हमने सकल उत्सर्ग !
एक तुम न छिने, हमारे
लोक औ' परलोक
अधजले हम, भस्म
कर पाया हमें क्या शोक ?

स्फटिक - सा अन्त:करण,
माणिक्य - मौक्तिक - भाव
वह न रख सकते कभी
मुझसे अबूझ दुराव !
थे कहा करते मुझे
आह्लाद - सिन्धु असीम
कौन फल सुख ? दुख मुझे ?
मैं तो न आम न नीम !

वांसुरी मैं थी, पुकारा था
स्वयं को भूल,
थे कहा करते - विभूति-
प्रकामता, क्या धूल ?
खो - समो निज को उन्हीं में
मुग्ध सुनती बात;
मानने पर थी विवश
दिन को कहें जो रात !

आत्म - अनुभव सकुच
झुठलाती, रिसाती आप,
प्रिय - वचन करना अमान्य
रही समझती पाप !
बांस की पतली नली में
स्वर - समुद्र अपार—
ज्वार जो उमड़ा रहा
करना उसे उद्धार !

है भरी अंजुरी नहीं,
छूंछा हुआ आकाश,
तम न आंखों से हटा
सिमटा उदास प्रकाश;
मैं किसी को दोष क्यों दूं
एक यह संयोग;
योग का बाना बना
आया दुरन्त वियोग !

नाचने - गाने कहा जब
सजल - नयन निहार
सुमुख वह, सुख - दुख उमंग—
—तरङ्ग भूल - विसार
यन्त्र-चालित दारु - पुतली-सी
उठी मैं नाच
खोल स्वर - पर प्राण - पंछी
लय रहे थे जांच !

नन्दनन्दन को मिले आनन्द
सुख क्या और—
नाचता है साथ कर धर
विश्व - नट - सिरमौर !
और कैसे विषम समतल पर
खड़े हों सङ्ग ?
वह कहां सागर,
कहां मैं एक तरल तरङ्ग !

नाद मुरली का मधुर
भरकर दिशा - आकाश
शून्य मन में जम गया,
तब से उदास-उदास !
क्या उदासी ही सिरजती है
सुखद संगीत
और क्या संगीत का
ही नाम होता प्रीत ?

नाद था पाषाण में भी
गूंजता अश्रान्त
प्राण पर बस था नहीं,
देता प्रतिध्वनि कान्त !
प्रथम भ्रम - संभ्रम
चरम रमते स्वरों का बन्ध
आंख पल भर थी लगी,
फिर हो गई चिर - अन्ध !

दृष्टि की न पवित्रता हो नष्ट
पूर्ण प्रयास
था किया मैंने दिखें वह
देखते आकाश !
और छवि उभरे न,
उर उनका रहे अधिवास
गूंजती मुरली रहे
श्रुति में रहे स्मृति-लास !

एक आस जिऊं मरूं,
बस मैं तुम्हारे पास,
एक शब्द कढ़े न मुंह से
अर्थ का हो दास !
अलग होते ही सुलग
उठते धुआं भर - भाव,
हो जगत गतिशील
अपनी तो बंधी है नाव !

एक झटके से इसे लो तोड़,
है वन - फूल,
छोड़ डंठल पर दिया
हो जायगा चू धूल !
मत लगाओ तुम गले,
दो माल्य में मत ठौर
चान्द्र कर ले तोड़,
कैसी रश्मि होगी सौर !

एक श्याम शिला मिलाती
थी हिला कर नीप,
चक्रवाकवधू निरखती धूप,
छांह - समीप !
खोजती होतीं मुझे सखियां
विकल श्रम - सिक्त
मधु - मधुर सुधियां सलोनी
अब अलोनी, तिक्त !

नयन-यमुना में हुआ बिम्बित
गगन विधु - संग
भंवर - धूर्णित, फेन - चूर्णित
उठी तुङ्ग - तरङ्ग !
एक दिन ललिता सखी
के साथ परम - विधेय
आलियां थीं और आई
पूर्ण करने ध्येय !

सन्निकट से विकट ऐसे
प्रश्न पूछे साध,
हरिणशावक पर चलाए
निशित शर ज्यों व्याध !
क्षुद्रबुद्धि अशुद्ध अन्तःकरण
गोपी - ग्वाल
हैं समझते : जार - चौर-
परम्परा - जयमाल !

तुम कि काम - कला - कुतूहल-
केलि - मेलित प्राण
कुछ नहीं हो और केवल
नृत्य - वाद्य - निधान !
मूल्य नैतिक मानते हो
तुम नहीं स्वच्छन्द
धर्मभ्रष्ट हुईं तभी
ब्रज - युवतियां मतिमन्द !

जानते हो या न हम सब
राधिका के मित्र
राधिका - संग देखते हैं
खेल चित्र - विचित्र !
तुम कभी वंशी बजाते,
कभी रचते रास,
कभी करते हंस - विहंस कर
शत्रुओं का नाश !

सदाचार न हों, कहो यह—
दुराचार प्रचण्ड
पूर्णता को देखते हम—
चरित में कर खण्ड !
सवय सहचरियां अरे हम,
राधिका की एक
हम भले हों बोल तान
कि राधिका सम, टेक !

हम अनन्यविषय इसीसे
राधिका से प्यार
प्रेम हेम कहीं तुम्हारा हो
हुई अङ्गार !
तुम उसे दाक्षिण्य से
करके स्ववश दो मार
मानती सम्मोहिता
होगी उसे उपकार !

कल - मधुर सुर से गरल
छल छल उगल सौ बार
मुरलिका अपनी हुई
सपना बना संसार !
राधिका माध्यम नहीं,
अनुभूति अपनी आप
प्राण का वरदान अब
उसके लिए अभिशाप !

प्रणयिनी हम हैं तुम्हारी
क्या ? हमें क्या ताप
राधिका जिस मग - चलेगी,
पग बढ़ेंगे आप !
नियति यदि उसकी मरण,
तव चरण की सौगन्ध
पद्मिनी जब भी जले,
पहले उड़ेगी गन्ध !

हम सहें अपयश,
सुयश के रसकलश तुम शुद्ध-
परुष पुरुष परम्परा के
तुम प्रतीक प्रबुद्ध !
राधिका सहकर्मिणी
निष्कर्म निष्फल गौण
मुख्य तुम हो सुमुख श्याम
विमुख रहें हम मौन !

आक्रमण झेले विहंस,
रस - वश मचा हुड़दंग
सबल बोले : राधिका आत्मा
तुम्हीं सब अङ्ग !
अङ्ग - सङ्गति सहज
आत्मा चिर-असङ्ग उदार
राग स्वर - संगति - समर्पित
नाद प्राण - पुकार !

मैं तुम्हें बहुमान देता
निश्चितार्थ प्रमाण
तुम नहीं ऐश्वर्य्य - मत्त
विनीत सर्व - समान !
रामिका विद्युल्लता की
विकच ज्योति प्रसून
तुम लगाती हो हृदय से,
मैं अकिञ्चन ऊन !

छू नहीं सकता, हृदय में—
आ गई वह आप
झलक अन्तर में निरन्तर
पा रहा दुष्पाप !
किन्तु तुम हो नयन के फल,
चांदनी - सी शीत
देखते आंखें न थकतीं,
रूप रस की प्रीत !

एक के नाते रहे पाते
विविध आस्वाद
सहचरी, अनुजा, सखी के
अनगिनत आह्लाद !
वीथिका संकरी प्रणय की
एक ही पर्याप्त
निभृत मोद - विनोद के
पथ तो सभी को प्राप्त !

कौन मुंह लगता, किसी ने
ली मुरलिका छीन
दूसरी लाई कलापी - पंख
वन से बीन !
एक लकुटी टिका
मोड़ - मरोड़ अङ्ग - त्रिभङ्ग
अनुकरण करती कृशन का,
हो गया स्वर - भङ्ग ।

चरण - नख की कान्ति
की नीराजना - सी दृष्टि
घूमने थी लग गई,
निस्पन्द - सी थी सृष्टि !
तुम न करुणा से हुए कातर
किया न दुराव
हम प्रपन्न हुए नहीं
समझा न मन का भाव !

सोचते हैं हम न लेंगे नाम
अब प्रण ठान,
तुम हमारी व्यग्रता से
यदि रहे अनजान !
ऐंठ देते हो परन्तु
कठोरता से प्राण
क्या तुम्हें मिलता दुखा कर
कौन - सी यह बान ?

तृषित आंखें गाड़ते तुम,
कांपती थी देह
हम तुम्हारे द्योत में
पहचानते निज गेह !
शान्त जल में हलचलों का
जन्म मन के हेतु
हो रहा था, बाँधते थे तुम
प्रणय का सेतु !

निमिष भर न अलग पलक से
तुम हुए अपरूप,
मर्म को आलोक में लाए
कहा कि अनूप !
छोड़ कर सुरलोक
स्वेच्छा से बसे गोलोक
अब कहां ? कह चल दिए,
क्या हाव, क्या बिब्बोक !

तिमिर - कारागार में हम
बन्द तुम उन्मुक्त
क्यों नहीं आघात करते
तमस् के उपयुक्त ?
शिलीभूत हुई अहल्या
पा तुम्हारा शाप
पुण्य के ऊपर दिया पद
तम - समर्पित पाप !

एक बार जिसे निहारा
वह तुम्हारा क्रीत
कठिन आयस तुम न पायस
खा हुए नवनीत !
लौह - शृंखल तोड़ने की
शक्ति पाते पांव
और जा बसते कहीं
रहते नहीं इस गांव !

सुन वचन चित्रा सखी का
सहज चित्र - विचित्र
बोल ललिता ने कहे
समतोल परम पवित्र !
युग न यह आंखें लड़ाने का
जगें गोपाल
प्रणय परिणति पा चुका है
तोड़ गुञ्जा - माल !

नियति - नियत रहे, बहे
मझधार में स्वच्छन्द
एक सीता एक राधा
प्रणय धर्मानन्द !
तुम्हें पछतावा तुम्हें ईर्ष्या
तुम्हें आक्रोश
तुम संभालो विरह - ज्वाला,
आंसुओं का कोष !

राजसुख के काज वह
न गए हमें हैं छोड़,
शिशिर मधुऋतु को बुलाता
वृन्त तोड़ - मरोड़ !
आयु और न हम गंवाएं
स्नायु - बन्धन ढील
प्रणय - परिणय कम हुए
संघर्ष हो अब शील !

कर्मयोगी हो गए वह
देख - देश विपन्न
फेंक डाली बांसुरी
लख कर समर आसन्न !
शंख फूंकेंगे वरें
कि स्वतन्त्रता सब लोग
देश - हित हों अमर
मर कर, भोगना क्या रोग !

बांसुरी सुनते नहीं सब,
वज्र गर्जन तीक्ष्ण
दुष्कृतों का वध,
सुकृत का परित्राण अभीक्ष्ण !
सब समझ लेंगे,
बदल सकती नहीं यों सृष्टि
सृष्टि के बदलाव से पहले
बदलती दृष्टि !

क्रम बदलना है, न अब
श्रम की मचेगी लूट
सोखने की प्राण - रस
देनी नहीं है छूट !
उथल - पुथल मचे कि
क्रूर - नृशंस - वंश उपाट
शान्ति सुख - सुविधा सभी
लेंगे परस्पर बांट !

गढ़ें नव - जीवन बढ़ें
पिछड़े हुओं के साथ
छोड़ कर जिनको गए सब
पकड़ उनका हाथ !
प्रेम का ही रूप यह भी
किन्तु भिन्न प्रकाश
ठोस मिट्टी पर खड़े
देखें झुका आकाश !

मुखर मुख सबके
अकेली राधिका थी मौन
गुनगुनाती थो कि पछताती
कहे तो कौन !
जो व्यतीत हुआ मधुर
संगीत था पर व्यर्थ,
पा सका जीवन न जिससे
सौम्य सुन्दर अर्थ !

विजन वन में ढूंढ़ती - सी
गन्ध वाली घास
सांस से टकरा रहे - से
क्षण उदास - उदास !
नयन पथराए पुलिन से,
रेत - सी जलधार
कर्णधार निहारता
आरम्भ - उपसंहार !

द्रवित - सी दैनन्दिनी की
सरल तरल तरङ्ग
घुल रहे जिसमें धुले - से
इन्द्रधनुषी रंग !
जल तरङ्ग बजा रहा - सा
स्वप्न का संगीत
गीत होता है नहीं जीवन,
रहे दिन बीत !

श्रेय - सा एकान्त,
शान्त दिनान्त - सा मुख म्लान
काल - व्याल - डंसा
फंसा - सा पङ्क में दिनमान !
तमस से रज पा रहा
रज से कि सत्त्व प्रकाश
हो रहा समरस, सघन नभ
कह रहा ज्यों—प्यास !

प्रीति अप्रतिहत अहैतुक,
ग्रन्थियों से मुक्ति
ढूंढ़ती स्वाती - संघाती
खोल सम्पुट शुक्ति !
शक्ति आत्म प्रसादनी
ज्यों भूल बैठी सांस
आस खो बैठी अनवहित
ज्यों अचल विश्वास !

श्री उपासी, शारदा ज्यों
वीन फेंक उदास
निशि-विनत थे राधिका के
नयन पद्म - पलाश !
प्रश्न स्रोत सहस्र का
उत्तर अजस्र उसांस
लीन अपने में कि
सपने में मुंदी-सी आस !

पार बाधाएं बहुत कीं,
लक्ष्य किन्तु अलक्ष्य,
अब कहां किस देश जाएं
काल से हो रक्ष्य !
श्रोत्र - सुख - वञ्चित,
असम्बोधित हमारा नाम
पहुंचना चाहे न हो,
चलना हमें अविराम !

सजल जलद अचल पलक-दल
विमल मुख पर छांह
कर रहे-से, वङ्क ग्रीवा,
शिथिल बाईं बांह !
जोड़ती-सी तार अन्तर का
नयन के पार,
थी परा में गुनगुनाती
राधिका मन मार !

एक झटका - सा लगा :
यह रतजगा क्या व्यर्थ
निकट सट आई विहंस
ललिता बताने अर्थ !
कौन मौन रखे वहां
ललिता जहां अनमोल
योग समता, कर्म-कौशल—
बोलती हो बोल !

रह सकीं राधा न अविचल
सुन ललित उद्‌गार
गगन का खग्रास
क्षिति का आक्षितज विस्तार !
एक धर्म प्रणय,
अचिन्त्य चरित्र पर संसार
रच - विरच विस्तार
है करता स्वयं संहार !

विषमता समता बुलाती,
अन्धकार प्रकाश
सूर्य - चन्द्र - ग्रहण,
भला निर्माण है या नाश ?
आग - पानी ' तत्त्व हैं
निरपेक्ष या संयुक्त
सर्वसंचालक न होगा
एक पल को मुक्त ?

पाप आप करो, कराता
पुण्य है भगवान,
शाप आप बरस गए
वरदान प्रभु का दान !
बुद्धि शुद्ध कभी न होगी,
चेतना अभिशप्त
अश्रु कितने भी बहें
समवेदना सन्तप्त !

मैं चली विश्राम - हेतु
अहेतु ही हूं श्रान्त
तुम अभी बैठो,
करो संलाप सुन्दर शान्त !
तर्क से श्रद्धा नहीं जुड़ती,
न सत्य अनेक
नहीं गोष्ठ प्रकोष्ठ होता
अन्तरा भी टेक !

कुछ नहीं ऐसा असह—
हो योग या कि वियोग,
पड़ी बान छुड़ा सके हैं
बहुत ऐसे लोग !
मिलन के क्षण ही उपजता
विरह मानी बात
साथ दोनों पांव उठते
पुलिन हो भी ज्ञात !

ज्योति उजले तो छंटें
परछाइयां स्वयमेव
अस्मिता की पुष्पवर्षा से
गया ढक देव !
प्रणय जो न जिया गया
वह पवन - स्वन - सा नाद
है प्रणय सम्पूर्ण सत्य
कि अर्द्ध - दग्ध विवाद !

भृकुटि कुञ्चित हेर किञ्चित्
घेर सबने साथ
प्रार्थना की बैठने की,
दे शपथ, धर हाथ !
चपल ललिता ने दिया
झटपट हृदय - पट खींच :
लपट नटखट बन न रहते,
आग से मत सींच !

विनय - अनुनय कर तुझे
लाई नहीं तज काज,
कृष्ण चन्द्र नहीं यहां
क्या शुक्ल शशि से लाज !
खीझ मत समझा मुझे,
सखि, वस्तु है क्या ज्ञान
जानती तो है कि ललिता
है निपट नादान !

यह हुई शिष्या,
अजी उद्धव, अजी अक्रूर,
तू मुझे समझा,
तुझी पर भक्ति है भरपूर !
है मुझे उद्धव अनुद्धत से
न द्वेष न द्रोह,
नन्द-नन्दन-पद विषम पथ
पर पड़े तज मोह !

जागरूक अजेय आत्मा
राजसुख का लोभ
तिमिर तारों में छिपाए
गगन से है क्षोभ !
तत्त्व अन्तर्गत न होता,
सत्त्व की पहचान
गन्ध आदिम व्रज - विपिन में,
वीथियां सुनसान !

वासना से शून्य सुन्दर
नहीं इन्द्रोद्यान,
कहां - प्यासे प्राण,
रेतीला कहां यह ज्ञान !
सरल ललिता का प्रणय—
विह्वल, विकल सुन बात,
हुआ घन मन राधिका का
चपल पीपल - पात !

बन्द, मन्द सजल पलक - दल
नयन - सम्पुट खोल
तरल मुक्ताहल फिसल
फैले चिबुक तक लोल !
भर भुजाओं में उसे
निश्चल - जलधि - गम्भीर
पृष्ठ पर बिखरे मसृण
कुन्तल - कलाप अधीर !

तनिक उलझा, तनिक सुलझा
चम्पकों से गौर
मन्द्र स्वर बोली :
समझना सखि न तुम कुछ और !
जानती हूं मैं तुम्हारा
हृदय क्या इस काल,
एक तन्तु लगा सभी में,
हम हिमार्त मृणाल !

किन्तु ललिता नाम के
अनुरूप बोले बोल,
मित्र से मैं मांगती हूं
मित्रता का मोल !
सचिव वे 'उनके' अरे,
इतना रखें हम ध्यान
स्नेह देने में विवश यदि,
दें अधिक सम्मान !

हम रहे कितने दिनों तक
बांसुरी की सांस,
हों हमारे बोल कटु,
उनका न यह उपहास ?
सदृश प्रिय हिय को लगा
यह राधिका का भाव
चिर प्रणयमय हृदय में
रहता न द्वेष, दुराव !

एक क्षण सब के रहे तब
प्रखर सुख मुख मौन
सोचती प्रत्येक प्रतिमा
मुखर हो तो कौन ?
हृदय राधा का अगाध
सुदीर्घदर्शी, शान्त,
दृग प्रजागर क्लान्त,
प्रज्ञा किन्तु कोमल कान्त !

कौन बल वह प्राज्ञ सम्मत
अचल जिससे ध्यान
धर्मनित्य अतुल तितिक्षा,
ज्योति - द्योतित प्राण !
क्या यही वह ज्ञान,
सुनियोजित मनीषा शस्त
विनत - शीर्ष अलोभ्य मन
अक्षोभ्य मानद - हस्त !

पूछ देखें आज हम सब
एक स्वर संलग्न
मर्म उद्धव के कहे का,
जहां राधा मग्न !
क्या संदेशा था पठाया
प्रिय - वचन अनमोल
राधिके, अविकल्प अल्प
बता, नयन दे खोल !

ग्रन्थियां पथरा गई हैं
प्रखर स्वर से बोल
उतर अन्तर में अगम जाए,
सुगम समतोल !
डोल परछाईं गई
आकाश की दृग नील,
जामुनी जल छलक यमुना
हो गई - सी झील !

बिजलियां चौंकीं
धवल - तल बादलों में कौंध,
ढाल अमिय - गरल दिया
शशि ने चषक ज्यों औंध !
राधिका हिम मौन रहने
में हुई असमर्थ
रहस ही विहंसी
कि उद्धव-आगमन अब स्वर्थ !

तीव्र जिज्ञासा विना
है ज्ञान - चर्चा व्यर्थ,
दिया सन्देसा सुना—
क्या शब्द, औ' क्या अर्थ !

मैं अपने मन को मना रहा,
तुम रोको अपना नयन-नीर !
देखें, प्रवाह बह रहा सहज,
सन्तुलन दे रहे खड़े तीर !

हम मिले अचानक थे उस दिन
ज्यों सुमन-सुरभि-सम्मेलन हो
फिर बिछड़ रहे ज्यों प्राण—
सिन्धु केवल लहरों का खेल न हो !
कुहरीले पुलिन निहार रहा,
सांसों के तार संवार रहा
गत विगत - अनागत की
उन पर झीनी-झीनी झनकार रहा !
तुम सिसक-सिसक कर थक जाओ
यदि गा पाओ प्रिय प्रणय-पीर !

तुम भूल न जाओ कूल - मिलन,
कुछ निर्जल गान दिए जाता,
कितनी भी दूर रहूं तुम से
शाश्वत आह्वान दिए जाता !
ये तड़िद् - रेख - सम चमकेंगे
घन अन्धकार भरने पर भी
ये प्रान गगन - मन भर देंगे
मुरझे उर से झरने पर भी !
मैं समझूं मैं कीलित हिमाद्रि,
तुम समझो, सिन्धु कि तुम गभीर !

श्याम का सन्देश स्वाती जब
कि चातक - व्रात
चिर - पिपासित पी गया
आनन्द - पुलकित - गात !
बढ़ी प्यास कि पूछ बैठी
और उद्धव - ज्ञान
वह जमा हिम,
निगलने पर ही मिलेगा त्राण !

ज्ञान जैसे बन्द होठों
से सटी मुसकान
अचल पर चलते पगों में
सिमटता दिनमान !
है जला देता अंधेरे को
जला कर प्राण
ज्ञान का है अर्थ
अपने आप की पहचान !

एक ज्योतिर्धार अग - जग
को रही है सींच
हम न सूखे रह सकेंगे
कांच हों या कीच !
ठोस ओस कभी न होगी,
तरल या चट्टान,
ज्ञान के विज्ञान का है
स्वानुभूति प्रमाण !

अतिनिभृत एकान्त एक
ज्वलन अधूम अघोर,
एक मौलिक मौन
फैला जहाँ रीता रोर !
एक शक्ति अखिल प्रकृति को
बाहुओं से घेर
मुक्ति का संघर्ष उसका
है सही हंस हेर !

बद्ध ही जो है सुखी
प्रतिबद्ध उसका काम
शक्ति वह कहती :
प्रथम हो मुक्त, फिर निष्काम !
शून्य को रमणीयता,
एकान्त की वह कान्ति
खो गई जो हर हृदय की
चन्द्र कन्दल शान्ति !

वह हमारे पास जैसे
मुकुर में आकाश
अधर पर ढलका नयन जल—
नयन में स्मित हास !
योग और वियोग मन का मोह,
भ्रम का भान,
ज्ञान का है अर्थ
शाश्वत मिलन ज्योति-निधान !

रूप - मोह ? अरूप वह
अविकार ही अभिराम,
ज्ञान का है अर्थ होना
गूढ़, आत्माराम !
—सुन लिया निःशब्द,
शब्द न अर्थ के थे साथ,
दस उंगलियां जोड़
ललिता ने उठाए हाथ !

धन्य राधे, धन्य तेरा
ज्ञान का परिपाक,
हम बजाएंगे इसे
हो जहां ढोल न ढाक !
कब उन्हें क्षण एक को
मन से निकाला ऊब
अङ्ग - अङ्ग तरङ्ग - रंगों में
गए जब डूब !

सिन्धु अतल अगाध
कैसे विन्दु पाए पार
ज्ञान का बांधे न पत्थर
पहुंच कर मझधार ?
थे समर्पित सर्व-विधि
माना उन्हें ही नाथ
दुख यही, ले प्राण, छोड़ा—
क्यों हमारा हाथ ?

सोच डाला तो बहुत
मुंह से निकाला एक—
शब्द भी न, उछालता जो
जड़ - गड़ा अविवेक !
हाथ ललिता के जुड़े
कि तुड़े - मुड़े अवलोक
समझ नारी ने लिया
नारी - हृदय का शोक !

सकुच राधा ने कहा :
क्या ज्ञान की हो सीख
निःस्व विश्व - गले प्रणय - मणि
ही पड़ी जब दीख !
प्रश्न जैसा अटपटा था :
मैं सिखाऊं ज्ञान
शब्दजाल बिछा दिया
क्यों तड़फड़ाएं प्राण ?

स्तब्ध ललिता,
राधिका उज्ज्वल प्रणय की आग,
द्रोह भैरव से किसे,
प्रिय है परन्तु विहाग !
हेतु शङ्का का नहीं
मनका यही है ठीक :
जाप अजपा की नहीं
यह पीट सकती लीक !

रख मयङ्क - समान आनन
राधिका के अङ्क
सिसक कर बोली : क्षमा, सखि,
पथ न तेरा वङ्क !
तू सहज सहगामिनी,
मेरे हृदय की मूक
ज्ञान मान न आत्म-वञ्चन की
करेगी चूक !

प्रणय - ज्ञान - समानता की
हो तुझे क्यों टेक !
क्षीर - नीर कि प्रणय - ज्ञान
हुए तुझी में एक !
टालती है तू, बुरा मानूं
कि दूं मैं छोड़,
सुरभि-सार निकालती मैं
सुमन - सुमन निचोड़ !

समझ रख, मेरा हृदय
मधुचक्र का है ढूह
मधु नहीं उतना कि जितना
मक्षिका का व्यूह !
रहस बोली राधिका :
लघु हो प्रणय पहचान,
ज्ञान की गरिमा मिटाती
क्षुद्रता का मान !

ज्ञान की अनुभूति दें
इन्द्रियों में शक्ति
ज्ञान अन्तर्द्धान संभव
ही नहीं अभिव्यक्ति !
'स्वप्रकाश' उसे कहा करता
सुमति - समुदाय
देख लें सामान्य जन,
कोई न शेष उपाय !

यदि स्वयं हम ज्ञान,
फिर अनुभव करेगा कौन
और कौन उसे कहेगा,
ज्ञान तो चिर - मौन ?
ज्ञान - घन लाता घुमड़
अज्ञान का सन्देश
ब्रह्म देता ब्रह्म को है
ब्रह्म का उपदेश !

चक्रमय भूगर्भ - गृह का
ज्ञान अन्तर्द्वार
काट चक्कर, भटक, थक,
जाओ निकल झख मार!
देख भाव - विभोर कम्पित
राधिका का गात
जड़ हुए सबके नयन
ज्यों कञ्जवन निर्वात!

ठगी-सी ठिठकी वहीं की
वहीं आधी रात
फाड़ तारक - दृग दिशाएँ
देखतीं : क्या बात?
शून्य नभ फिर से हुआ
ज्यों खो गया कुछ और
उलट - पुलट गया अचानक
सुचिर मण्डल सौर!

खीझ - सी धरती गई:
क्या मृत्तिका की देह
थक गई, अब और कितनी
दूर प्रिय का गेह!
जड़ हुई यमुना कि राधा
को हुआ आवेश
यह गरल सन्देह ले जाऊँ
मधुर मधु देश?

बन्द क्या, निस्पन्द, बन्द
हुआ अनिल - संचार
भेद यह न खुले न हो
इस सूक्ष्म का विस्तार !
सट - सिमट सब डालियां
तरु में हुई - सी लीन
कुसुम - दृग मूंदे हुए
ज्यों हों हृदय से हीन !

विहग - गण उड़ - से गए
तज नीड़ का आवास
हो गया सम्पूर्ण वृन्दावन
अगम आकाश !
कुछ समय वातावरण
निस्तब्ध था इस भांति
झलमलाई राधिका की
दन्त - मुक्ता—पांति !

अधर पर जैसे खुदा हो
प्रणय का अभिलेख
खिलखिलाईं आलियाँ
निर्मल हँसी यह देख !
झपट कर रजनी चली
धीरज गया ज्यों छूट
कब गिरी नक्षत्र - काञ्ची
क्षितिज - तट पर टूट !

चन्द्र - मुख झलका, लिए
हलका गुलाबी रङ्ग
प्राण - प्राण हुआ गगन,
मुसका रहा प्रत्यङ्ग !
बरस रस जैसे गया—
अवनी बनी आनन्द
वह नहीं मृण्मय,
हिरण्यम राधिका निर्द्वन्द्व !

जगत्प्राण हुआ समीरण
गुदगुदाता प्राण;
झट इला तक ला मिलाया
स्वर्ग का सोपान !
पत्र - पत्र लगे लहर लेने
किलोल - किलोल,
सुमुख शाखाएं गईं हट
विटपवर से बोल !

क्रौञ्च-दम्पति की शिथिल कर
प्रणय - भीरु उसांस
वन्य कुक्कुट ने जगाया
धन्य सुप्त हुलास !
मुखर खग-कुल का अनर्गल
सुन त्रिगुण कल रोल
गहन - मन टुक झुक गया
कुड्मल-कुसुम - मिस डोल !

निर्निमेष निहार
आधा सोम, आधा व्योम,
सकल सखियों के जुड़ाए
सिहर कर सब रोम !
आज तो न छिपा छिपाए
नाम तेरा धाम
तू स्वयं वृन्दा कि
वृन्दाधाम राधाधाम !

जड़ प्रकृति भी है समझती
तत्त्व यह अभिराम
विहंसती - रोती - पिरोती
सजल मुक्ता - दाम !
तू हमें कहती सखी है,
दासियों पर प्रीत
पांव छूती विनत ललिता
यह नहीं अनरीत !

जन्म यदि फिर हों हमारे
बस कि तेरे साथ
हम बिकी निःशुल्क हैं
राधा - सखी के हाथ !
कौन किस संसार में
तेरा न जाने नाम
नील - हरित स्वयं जहां हों
हुए श्यामा - श्याम !

कौन फिर ऐसा, न जिसके
दैव अति प्रतिकूल
घिर तिमिर से चांदनी का
स्रोत जाए भूल !
स्वप्न पर विश्वास होता
मेरु - सा दृढ़ एक
अन्तरे की सुधि उसे होगी
सुनी यदि टेक !

हम तुम्हारी छांह
तनु अनुगामिनी सोल्लास
धूप कच्ची ने हमें धोया
तुम्हारे पास !
हम न हों चर्चित, जहां
अर्चित शशी की जोत
यह असम्भव, हम
रहे आजन्म ओत - प्रोत !

—विनय का क्या काम ?
ललिता—ललित विद्युद्दाम
विहंस बोली : राधिका लेगी
न जिनका नाम !
टेरते थे किन्तु वह
उर बांसुरी का चीर
नाम - धुन सुन मेटते दुःसह
प्रणय की पीर !

इधर फूलों की दुलारी
झट उठा घट घाट
पहुँच पौ फटते पुलिन पर
जोहती थी बाट !
यह, कहे किसकी कृपा का
था द्विमुख परिणाम
आम इसके, गुठलियों का
भी न देगी दाम ?

भूल जाएं रास-रस,
भूलें चुराना चीर;
किन्तु राधा को दिया
हमने बहा दृग - नीर !
भूल जाएंगे इसे भी
है नहीं विश्वास
बदलना इतना सरल
विश्वास का इतिहास ?

वायुमण्डल एक पल में ही
बदलता देख,
झलकने लघु - लघु लगी
राधा - अधर की रेख !
मर गई सुन मधुर मर्मर
मर्म - वेधक बोल
राग ललिता ने कि छेड़ा
दोल चढ़ हिन्दोल !

प्राणमणि मिलने चले जब
प्राणधन के पास
कौन वसुधा की सुधा
ले जायगा आकाश !
राग का कल्याण हो
जिससे जुड़े हैं श्याम
श्याम का कल्याण सुमिरें
राधिका का नाम !

—ये अनोखे बोल,
ये कल्लोल, यह उच्छ्वास
सुन न रोक सका शिशिरकण,
—हंस पड़ा आकाश !
विमल, शफरी - चपल लोचन
पूर्व दिशि की ओर
संग-संग उठे सभी के—
हो गया, लो, भोर !

धर परस्पर बाहु-ग्रीवा-कर
चलीं घर मत्त
थीं निकाल चुकी लुकी
निज-निज कथा का सत्त !
रुक ठुमक सुर - लय - गमक में
एक छेड़ी तान
आज तक जिसकी प्रतिध्वनि
है गुंजाती प्राण !

प्यार यह प्यार री!
बिन छुए जो बजे,
वह तुनुक तार री!

कह रहा कान में,
रह रहा प्राण में;
ज्ञान अभिमान में;
वह निराकार री!

शिशिर-ज्वाला-हरण,
तिमिर-तारण-तरण,
परस प्रिय के चरण,
मरण स्वीकार री!

□□

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की साहित्य-सर्जना

काव्य : (१) बाललता (२) अंकुर (३) उन्मेष (४) रूप-अरूप (५) तीर-तरंग (६) शिप्रा (७) अवन्तिका (८) मेघगीत (९) गाथा (१०) प्यासी-पृथ्वी (११) संगम (१२) उत्पलदल (१३) चन्दन वन (१४) शिशिर किरण (१५) हंस किंकिणी (१६) सुरसरि (१७) गीत वितान (१८) धूपतरी (१९) राधा-१ (प्रणय पर्व) (२०) राधा-२ (पुरुषार्थ पर्व) (२१) राधा-३ (दर्शन पर्व)।

संगीतिका : (२२) पाषाणी (२३) तमसा (२४) इरावती।

नाटक : (२५) देवी (२६) जिन्दगी (२७) आदमी (२८) नील-झील।

उपन्यास : (२९) एक किरण : सौ झांइयां (३०) दो तिनकों का घोंसला (३१) अश्वबुद्ध (३२) कालिदास।

कहानी : (३३) कानन (३४) अपर्णा (३५) लीला कमल (३६) सत्यकाम।

ललित-निबंध : (३७) मन की बात (३८) जो न बिक सकीं।

यात्रा-संस्मरण : (३९) अजन्ता की ओर (४०) निराला के पत्र (४१) स्मृति के वातायन (४२) नाट्य-सम्राट् पृथ्वीराज कपूर (४३) हंस-बलाका।

समीक्षा : (४४) साहित्य दर्शन (४५) त्रयी (४६) प्राच्य साहित्य (४७) स्थायी भाव और सामयिक साहित्य (४८) चिन्ताधारा।

संस्कृत-काव्य : (४९) काकली

प्रकाश्य : (५०) एक गजल संकलन (५१) नील लोहित (आत्मकथा एवं संस्मरण)

सम्पादन : 'राका' एवं 'बेला'।

॥ राधा ॥ ॥ जानकीवल्लभ शास्त्री॥